कश्यप—एक प्रजापति जो मरीचि का बेटा और ब्रह्मा का पोता और देव-दानवों का पिता था ।

गालव—कश्यप का चेला ।

शकुन्तला—विश्वामित्र की बेटी, मेनका अप्सरा के गर्भ से और कन्व मुनि की मुँह बोली पुत्री ।

प्रियम्वदा }
अनसूया } शकुन्तला की सहेली ।

गौतमी—एक बूढ़ी तपस्विनी ।

वसुमती—दुष्यन्त की रानी ।

सानुमती—एक अप्सरा और शकुन्तला की सखी ।

तरलिका—वसुमती की दासी ।

चतुरिका—एक दासी जो राजा के निकट रहती थी ।

वेत्रवती }
प्रतिहारी } रनवास की द्वारपालनी ।

परभृतिका }
मधुरिका } उद्यान रखाने वाली दो युवती ।

सुव्रता—सर्वदमन को खिलाने वाली ।

अदिती—कश्यप मुनि की स्त्री दक्ष की बेटी ब्रह्मा की पोती ।

राजा का साथी वा ढाडी वा तपस्विनी वा यवनी ।

शकुन्तला नाटक

प्रस्तावना

[रङ्गभूमि में ब्राह्मण आशीर्वाद देता हुआ आता है ।]

छप्पय

आदि सृष्टि इक नाम इक विधिहुतवाहन ।
वहुरि नाम यजमान योति ह्वै काल वतावन ॥
एक सर्वव्यापीक श्रवन गुन जात पुकारा ।
भूत प्रकृति फिर एक जनित अग जग संसार ॥
गनिये जु जीव आधार पुनि अष्टममूर्ति इनतें कहत ।
शंकर सहाय तुम्हारी करें नितप्रति तिनही में रहत ॥१॥

सूत्रधार आता है ।

१—जिसको कर्ता ने सृष्टि की आदि में रचा अर्थात् जल, और जो विधि पूर्वक दिये हव्य को लेता है अर्थात् अग्नि, और जो यज्ञ करता है अर्थात् होत्री, और दोनों ज्योति जिनसे समय विधान होता है अर्थात् चन्द्र सूर्य और वह विश्वव्यापी जिसका गुण शब्द है अर्थात् आकाश, और वह जिसकी प्रकृति वीज की वृद्धि है अर्थात् पृथ्वी, और वह जो जीव का आधार है अर्थात् पवन, इन आठ मूर्तियों में जो ईश प्रत्यक्ष है अर्थात् महादेवजी, सोई रक्षा करें ।

सूत्रधार (नेपथ्य की ओर देखकर)—अजी सिंगार कर चुकी हो तौ आवो।

नटी आती है

नटी—हाँजी मैं आई कहो कौन सी लीला करे।

सूत्रधार—यह सभा हमारे यशस्वी राजा विक्रमाजीत की है बड़े बड़े चतुर पण्डित इसमें विराजमान हैं, आज हमको कालिदास के बनाये अभिज्ञान-शकुन्तला नाम नये नाटक की लीला करनी है इससे सब कोई सावधान होकर खेलो।

नटी—तुम्हारा तौ प्रबन्ध ऐसा अच्छा है कि किसी बात में न्यूनता न होगी।

सूत्रधार—(मुसका कर)—है चातुरी अपना सिद्धान्त तो यह है—

दोहा

नाटक करतब तब भलो रीझै सजन समाज।
नातर सीखे हू बने दुचित रहत इहि काज॥२॥

नटी—(नम्रता से)—सच है, अब क्या आज्ञा होती है।

सूत्रधार—इससे उत्तम और क्या है कि सभा के आनन्द निमित्त कुछ गान करो।

नटी—कौनसी ऋतु का गीत गाऊँ।

सूत्रधार—ग्रीषम अभी लगी है और क्रीड़ा के योग्य भी है इससे इसी ऋतु का राग गाना चाहिये। देखो—

२—नाटक की बड़ाई तभी है जब देखने वाले कहें अच्छा हुआ, नहीं तो इस काम में भले सीखे हुए को भी विश्वास नहीं होता कि खेल अच्छा ही करेंगे।

ध्रुपद चौताला भैरवी वा धनाश्री

कैसे नीके लागत हैं वासर ऋतु ग्रीषम के
जीवन कों सन्ध्या प्यारी सुख उमहति है ।
सरिता सरोवर कुण्ड माहिं केलि करिवे तें
तरिवे तें देह दूनो आनन्द लहति है ॥
घनी घनी छाया में बन की पवन लागें
झुकि झुकि आवे नींद कल न गहति है ।
त्रिविध समीर वहै पाटलि सुगन्धि सनी
लागति शरीर आछी शीतलता रहति है ॥३॥

नटी—सच है ।

[गाती है

राग बहार वा बसन्त

कैसे भमर चुम्बन करत ।
नाग केसर कों सुअङ्कन रहसि रहसिहि भरत ॥
सिरस फूलन कान धरि बनयुवति मन कों हरत ।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत ॥४॥

— — —

(३) ग्रीषम के दिन कैसे अच्छे लगते हैं, साँझ समय मनुष्यों को अति आनन्द होता है, मन उमगता है, नदी और सरोवरों में नहाने से शरीर ठण्डा रहता है, घनी छाया में मन्दी और ठण्ढी पवन पाटलि के फूलों की सुगन्धि लिए हुए आती है जिसके लगने से हृदय को सुख होता है ।

(४) देखो भौंरे कैसे धीरे धीरे नागकेसर से रस लेते हैं और उसे अङ्क में भरते हैं फिर देखो बनवासिनी नवयौवना सिरस के फूलों का कैसा गहना बना कर कान पर रखती है । यह ग्रीषम ऋतु बड़ी सुन्दर है ।

सूत्रधार—धन्य है अच्छा गाया इससे सुनने वालों का चित्त एकाग्र होकर रङ्गभूमि चारों ओर चित्रालय के समान हो गई। अब कहो किस प्रकरण से सभा के सज्जनों को प्रसन्न करें।

नटी—अजी क्या अभी नहीं कह चुके हो कि अभिज्ञान शकुन्तला नाम नये नाटक की लीला करनी होगी।

सूत्रधार—हे चतुरी, भली सुध दिलाई! नहीं तो मैं इस समय भूल ही गया था, क्योंकि—

दोहा

लै बरबस तेरौ गयो मधुर गीत मुहि संग।
ज्यों राजा दुष्यंत कों लायो यहै कुरंग।५॥

[दोनों रंगभूमि से जाते हैं।

इति प्रस्तावना

शकुन्तला नाटक

अंक १

स्थान बन

[दुष्यन्त रथ पर चढ़ा हुआ धनुष बान लिये हरिन का
. खेदता सारथी सहित आता है ।]

सारथी—(पहिले हरिन की ओर फिर राजा की ओर देखकर)—हे आयुष्मान—

लखि कर सायर अरु तुम्हें अर सायक सर चाप ।
देखत हूँ खेदत मनो मृगहि पिनाकी आप ॥६॥

दुष्यन्त—हे सारथी ! यह मृग तो हमें दूर ले आया देखो कैसा—

चौपाई

फिर फिर सुन्दर ग्रीवा मोरत । देखन रथ पाछे जो घोरत ॥
कबहुक डरपि बान मति लागे । पिछलो गात समेटत आगे ॥

---

(६) जब दक्ष का यज्ञ महादेवजी ने विध्वंस किया तो मृग का रूप धर के यज्ञ भागा, महादेवजी अपना पिनाक धनुर लेकर उसके पीछे गए । सारथी कहता है कि हे राजा ! इस हरिन के पीछे धनुष तान कर जाते हुए मुझे ऐसे दीखते हो मानो महादेवजी जाते हैं ।

(७) पीछे आते हुए रथ को हरिन फिर फिर कर देखता जाता है, और बान लगने के डर से कभी कभी अगले शरीर को सिमटता है, मार्ग में उसके थके मुख से अधचाबो दाभ गिरी है, अब ऐसो कुलांच भरता है मानो धरती पर पैर ही नहीं रखता ।

अधरोंथी मग डाभ गिरावत । थकित खुले मुखनं बिखरावत ।
लेत कुलांच लखो तुम अबहीं । धरत पांव धरती जब तबहीं ॥७॥

[चकित होकर

अब क्या किया जाय मुझे तो हरिन सहज दिखलाई भी नहीं देता ।

सारथी- महाराज अबतक धरती ऊँची नीची थी इससे मैंने रथ रोक-रोक कर चलाया था और इसीसे यह कुरङ्ग दूर निकल आया परन्तु अब भूमि एक सी आई इसे तुरन्त ले लेंगे।

दुष्यन्त—तो अब घोड़ों की रास छोड़ो ।

सारथी—जो आज्ञा (मानो रथ को भर दौड़ चलाता है) महाराज देखिये—

चौपाई

जबहि रास ढीली मैं कीनी । तानि देह अगली इन लीनी ।
चलत कनौती लई दबाई । चमर शिखा हू हलन न पाई ॥
देखो बढ़त इन्हें तुम आगे । रज खुरतारहू संग न लागे ॥
अब तुरंग झपटत ये ऐसे । सहि न सकत मृग वेगहि जैसे ॥८॥

दुष्यन्त—(प्रसन्न होकर) सच है ऐसे झपटते हैं कि इन्द्र और सूर्य के घोड़ों को भी जीत लेते हैं---

चौपाई

दीखति वस्तु रही जो छीनी । तिन अब तुरत बिपुलता लीनी ।
जो दीखति ही बीच कटी सी । सो लखाति अब एक सटी सी ॥

---

(८) रास ढीली होते ही घोड़े कनौती दबाकर ऐसे दौड़े हैं कि सिरकी चमर शिखा (कलगी) भी नहीं हिलती और खुरों से उठी हुई धूल भी साथ नहीं लगती, अब ऐसे झपटते हैं मानों इस हरिन का वेग नहीं सह सकते ।

(६) जो वस्तु दूर से पतली दीखती थी अब निकट आने पर मोटी

सहज स्वभाव वक्र जो कोई। सरल रूप दीखत अब सोई॥
छिन न दूर कछु छिनहु न नेरे। कारन अधिक वेग रथ करे॥६॥

सारथी! देखो अब हम इसे गिराते हैं।

[धनुष पर बान चढ़ाता है

नेपथ्य में

हे राजा इसे मत मारो यह आश्रम का मृग है।

सारथी—(शब्द सुनता और देखता हुआ)—महाराज बान के सामने हरिन तो आया परन्तु बीच में ये तपस्वी खड़े हैं।

दुष्यन्त (चकित होकर)—अच्छा तो घोड़ों को रोको।

सारथी (रथ को ठहराता है) —जो आज्ञा।

[एक तपस्वी दो चेलों समेत आता है]

तपस्वी (बाँह उठा कर)—हे छत्री! यह मृग आश्रम का है मारने योग्य नहीं है—

दोहा

नाहिन या मृग मृदुल तन लगन जोग यह बान।
ज्यों फूलन की राशि में उचित न धरन कृसान॥
कहाँ दीन हरिनान के अति ही कोमल प्रान।
ये तेरे तीखे कहाँ सायक वज्र समान॥१०॥

दीखती है, जो कटी हुई सी थी वह अब जुड़ी हुई निकली, जो पहले नगीच पर टेढ़ी-थी अब पीछे दूर रह जाने पर सीधी दीखती है, इस रथ के वेग के आगे दूर और निकट में कुछ अन्तर ही नहीं है।

(१०-११) इस हरिन के कोमल शरीर में बान मारना ऐसा है जैसे फूलों के ढेर पर आग रखना, भला देखो तो कहाँ यह कठोर बान और हरिन के कोमल प्रान, इससे हे राजा तू बान उतार ले। यह तो निर्दोषियों की रक्षा को बनाया है न कि उनके मारने को।

लै उतारि या तें नृपति भलो चढ़ायो बान।
निरदोषिन मारक नहीं यह तारक दुखियान ॥११॥

दुष्यन्त—लो मैं बान उतारे लेता हूँ।

तपस्वी (हर्ष से)—हे पुरुकुलदीपक! तुम्हें ऐसा ही चाहिये—

दोहा

उचित तोहि भूपति यह जन्म पौरकुल पाय।
जनमैगो तो घर सुवन गुनी चक्रवै आय ॥१२॥

दोनों चेले—(बाँह उठाकर) तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र हो।

दुष्यन्त—(प्रणाम करके) ब्राह्मण बचन सिर माथे।

तपस्वी—हे राजा, हम यज्ञ के लिये समिध लेने जाते हैं आगे मालिनीतट पर कन्व महर्षि का आश्रम दीखता है अवकाश हो तो वहाँ चल कर अतिथि सत्कार लीजिये।

होत वहाँ जब देखिहो आँखिन तें महराज।
विघ्न विना तपसीन के धर्मपरायन काज॥
जानोगे नरनाह तब तुम अपने मन माँह।
केती रच्छा करति यह गुर्वीलांछित बाँह ॥१३॥

दुष्यन्त—महर्षि आश्रम में है कि नहीं?

तपस्वी—अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथिसत्कार की आज्ञा देकर उसीकी ग्रह दशा निवारने के लिये सोमतीर्थ गए हैं।

---

(१२) हे राजा पुरवंश में जन्म लेकर तुम को इस समय बान उतार लेना ही उचित था। जावो हम आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।

(१३) उस आश्रम में जब तुम देखोगे कि तपस्वियों के धर्मकार्य कैसे निर्विघ्न होते हैं, तब जानोगे कि यह मेरी भुजा जिसमें धनुष की प्रत्यञ्चा के चिन्ह ही आभूषण हैं, कितने सत्पुरुषों की रक्षा करती है।

दुष्यन्त—अच्छा हम उस कन्या को देखेंगे और वह हमारा भक्तिभाव महर्षि से कहेगी।

तपस्वी—सिधारिये हम भी अपने काम को जाते हैं।

[चेलों समेत जाता है

दुष्यन्त—हे सारथी घोड़े हाँको इस पवित्र आश्रम के दर्शन करके हम अपना जन्म सफल करें।

सारथी—जो आज्ञा।　　　　[रथ को फिर बढ़ाता है

दुष्यन्त—(चारों ओर देख कर) हे सारथी जो किसी ने बतलाया भी न होता तो भी यहाँ हम जान लेते कि तपोवन समीप है।

सारथी—महाराज ऐसे आपने क्या चिन्ह देखे।

दुष्यन्त—क्या तुम को चिन्ह नहीं दिखाई देते देखो—

चौपाई

रूखन तर मुनि अन्न परयो है। शुककोटर ते यह जुगिर्‌यो है॥
कहूँ धरीं चिक्कन शिल दीसें। इंगुदिफल जिन पै मुनि पीसें॥
रहे हरिन हिलि ये मनुषन तें। नैक न चौंकत बोल सुनन तें॥
सोहति रेख नदीं तट बाटा। बनी टपकि जल बल्कल पाटा॥१४॥

और देखो—

चौपाई

पवन झकोरति है जल कूला। बिटप किये जन उज्जल मूला॥
नवपल्लव दीखत धुधराए। होमधुआँ जिन ऊपर छाये॥

---

(१४) तपोवन के ये चिन्ह हैं कि तोतों की कोटरों से गिर-गिर कर सामक मकड़े की बाल रूखों के नीचे पड़ी है जहाँ-तहाँ हिंगोट कूटने की चिकनी शिल रक्खी हैं हरिन मनुष्यों से ऐसे हिल रहे हैं कि हमारी आहट पाकर कुछ भी नहीं चौंकते पगडंडियों में नदी तक गीले कपड़ों से बूंद से टपक टपक कर कैसी लकीर बन गई है।

उपवन अग्रभूमि के माहीं। काटि के दाभ रहे जह नाहीं ॥
चरत फिरत निधरक मृग छौना। जिनके मन शंका नैको ना ॥१५॥

सारथी—महाराज अब मैंने भी तपोवन के चिन्ह देखे।

दुष्यन्त (थोड़ा दूर चल कर)—हे सारथी तपोवनवासियों के काम में कुछ विघ्न न पड़े इससे रथ यहीं ठैरा दो हम उतर लें।

सारथी—मैं रास खैंचता हूँ महाराज उतर लें।

दुष्यन्त—(उतर कर) तपस्वियों के आश्रम में विनीत भेष से जाना कहा है इसलिये लो तुम ये लिये रहो (सारथी धनुष और आभूषण लेता है) और जब तक मैं तपोवन वासियों के दर्शन करके आऊँ तुम घोड़ों की पीठ ठण्डी कर लो।

सारथी—जो आज्ञा।

[जाता है

दुष्यन्त—(घूम कर और देख कर)—यह आश्रम का द्वार है अब मैं इसमें चलता हूँ।

[सगुन देख कर

दोहा

शान्ति छेत्र आश्रम यहै पुन्नहि याके माँह।
कहा यहाँ फल देहिगी फरकत मेरी बाँह ॥
अचरज हू की बात ना फल याको यदि होइ।
होनहार कहुँ न रुके जानत है सब कोइ ॥१६॥

(१५) पवन के झकोरे हुए जल से नदीतट के वृक्षों की जड़ धुल धुल कर स्वेत निकल आई हैं नई कोपलों के पत्ते होम का धुआँ लग कर धूंधले हो गये हैं उपवन के आगे जिस भूमि से दाभ कट गई है उसमें मृगछौने निशङ्क चरते फिरते हैं।

(१६) यह तो पुन्नछेत्र है यहाँ बाँह फड़कने से क्या लाभ होगा और जो हो तो कुछ अचरज भी नहीं है क्योंकि होनहार के सैकड़ों द्वार होते हैं।

नेपथ्य में

सखियो, यहाँ आवो !

दुष्यन्त—(कान लगा कर)—इस फुलवाड़ी के दक्खिन ओर क्या अलाप-सा सुनाई देता है। मैं भी वहीं चलूँ। (चारों ओर फिर फिर कर और देख कर) अहा ! ये तो तपस्वियों की कन्या हैं जो अपने अपने चित्त अनुसार कोई छोटी कोई बड़ी गगरी लिये पौधे सींचने को आती हैं। धन्य हैं ! कैसा मनोहर इनका दर्शन है !!

दोहा

या आश्रम की तियन को जैसो गात अनूप ।
मिलनो तैसो कठिन है रनवासन में रूप ॥
ऐसे ही वन की लता अपने गुनन प्रताप ।
नित उद्यान लतान को देति लाज संताप ॥१७॥

अब इस वृक्ष की छाया में खड़ा हूँगा।'

[खड़ा होकर देखता है

दो सखियों के साथ शकुन्तला घड़ा लिये आती है।

शकुन्तला—सखियो, यहाँ आओ ! यहाँ आओ !!

अनसूया—हे शकुन्तला मैं जानती हूँ पिता कन्व को आश्रम के बिरछे तुझ से अधिक प्यारे होंगे, नहीं तो तुझ नई चमेली सी कोमलाङ्गी को इनके सींचने की आज्ञा क्यों दे जाते।

शकुन्तला—हे अनसूया ! निरी पिता की आज्ञा ही नहीं, मेरा भी इन वृक्षों में सहोदर का सा स्नेह हो गया है।

[पेड़ को पानी देती है

दुष्यन्त (आप ही आप)—यह कन्व की बेटी शकुन्तला क्यों

---

(१७) जैसे आश्रम की युवतियों का सुन्दर रूप रनवास की स्त्रियों में मिलना कठिन है, ऐसे ही वन की लता अपने गुनों से उद्यान (बाग) की लताओं को लज्जित करती है।

क्यों कर हुई। वह ऋषि बड़ा अविवेकी होगा जिसने ऐसी सुकुमारी को आश्रम-धर्म में लगाया है।

दोहा

सहज मनोहर रूप यह, तनक बनावट नाहि।
ताहि लगावन चहत मुनि, कठिन तपोव्रत माहि॥
मोहि न दीखत है उचित, उनको यहै बिचार।
मनहुँ कमलदलधार सों, काटत छोंकर डार॥१८॥

भला हो सो हो,। अब तो रूख की ओझल से इसे निशङ्क बात-चीत करते देखूँगा। [एकांत में बैठता है

शकुन्तला—हे सखी अनसूया ! मेरी वल्कल की चोली प्रियम्वदा ने ऐसी कसकर बाँधी है कि सब अँग जकड़ा जाता है इसे तू ढीली करदे।

अनसूया—अच्छा करती हूँ। [चोली ढीली करती है

प्रियम्वदा (हँस कर)—मुझे दोष क्यों देती है ? अपने जोबन को दे, जो तेरे उरोजों को पल-पल बढ़ाता है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—इसने ठीक कहा है।

चौपाई

ये सूक्ष्म गांठित तें बांधे। वलकल बसन धरे दुहु कांधे॥
इन में ढके न दीखत हेरे। मण्डल जुगल उरोजन केरे॥

---

(१८) इस कोमल अङ्गवाली से तपस्या कराना ऐसा है, जैसे कमल की पंखड़ी से छोंकर को डाली काटना। इसलिये जिस मुनि ने इसे तप में लगाया है वह अविवेकी है। इस युवती का रूप बनावट का सा नहीं है।

(१९) कन्धे पर बंधे हुए जुगल स्तनों को ढांकते हुए वल्कल-वस्त्र में इसका उमगता शरीर पूरी तरह शोभा नहीं पाता जैसे पीले पत्तों में ढका हुआ फूल।

उमगति देह मनोहर ती की। पावति नहि शोभा निज नीकी॥
छुप्यो फूल सुन्दर जिमि कोई। पीरे पातन के बिच होई॥१६॥

अथवा माना कि वल्कल वस्त्र इसके शरीर के योग्य नहीं है, फिर भी यह बात नहीं कि शोभा न देते हों, क्योंकि—

दोहा

सरसिज लगत सुहावनो यद्यपि लियो ढकि पंक।
कारी रेख कलंक हू लसति कलाधर अंक॥
पहरे वल्कल वसन यह लागत नीकी बाल।
कहा न भूषन होइ जो रूप लिख्यो विधि भाल॥२०॥

शकुन्तला—(आगे देखकर)—सखियो, देखो पवन के झोकों से वकुल के पत्ते कैसे हिलते हैं। मानों वह मुझे अंगुलियों से अपने निकट बुलाता है। मैं जाती हूँ इसका भी मन रख आऊँ।

[वृक्ष की ओर चलती है

प्रियम्वदा—सखी शकुन्तला, तू छिन भर यहीं खड़ी रह।

शकुन्तला—क्यों।

प्रियम्वदा—इसलिये कि तेरे खड़े रहने से यह बकुल का पौधा ऐसा लगता है मानों इससे लता लिपट रही है।

शकुन्तला—इसी से तो तेरा नाम प्रियम्वदा हुआ है।

दुष्यंत (आप ही आप)—प्रियम्वदा ने बात प्यारी कही परंतु सच्ची भी कही, क्योंकि—

दोहा

अधर रुचिर पल्लव नये भुज कोमल जिम डार।
अंगन में यौवन सुभग लसत कुसुम उनहार॥२१॥

---

(२०) कमल कीच में भी शोभायमान लगता है और चन्द्रमा में काली रेखा भी सोहती है। इस भाँति इस सुन्दरी के शरीर पर वल्कल वस्त्र भी अच्छा लगता है। जिसे विधाता ने रूप दिया उसे सभी सोहता है।

अनसूया—हे सखी शकुन्तला, देख यह नई चमेली जिसका नाम तैंने वनज्योत्स्ना रक्खा है इस आम की कैसी स्वयम्बरवधू बनी है। क्या तू इसे भूल गई*।

शकुन्तला—जो इसे भूल गई तो मैं अपने आपको भी भूल जाऊँगी। [लता के निकट जाती

सखी अच्छी ऋतु में ये लता वृक्ष मिले हैं। वनज्योत्स्ना तो अब नये फूलों से नवयौवना हुई और आम भी नई डालियों से उपभोग के योग्य है। [खड़ी हुई देखती

प्रियम्वदा (हँस कर)—सखीअनसूया, तू जानती है शकुन्तला वनज्योत्स्ना को क्यों ऐसे चाव से निहारती है।

अनसूया—न सखी, मैं नहीं जानती तू बतला दे।

प्रियम्वदा—इसलिये कि जैसे वनज्योत्स्ना को अपने समान वृक्ष मिल गया है, मुझे भी मेरे समान वर मिले।

[पानी का घड़ा झुकाती है

दुष्यंत (आप ही आप)—कहीं यह ऋषि की बेटी दूसरी जाति की स्त्री से तो न हो। अब संदेह को छोड़ूँ क्योंकि—

दोहा

भयो जु मेरो शुद्ध मन अभिलाषी या माहिं।
ब्याहन क्षत्री जोग लह संशय नैकहु नाहिं॥

(२१) इसके लाल होंठ हैं सोई मानो लता के नये पत्ते हैं। बांह है सोई कोमल शाखा है और अंगों में भरा यौवन है सोई मनोहर फूल है।

* स्वयम्बरवधू अर्थात् जिसने अपना पति आप ढूंढ लिया हो

(२२) मेरा मन इस पर आसक्त हुआ इससे मैंने जान लिया कि यह क्षत्री के ब्याहनेयोग्य है, क्योंकि सन्देह को सज्जनों के मन की भावना ही निवार देती है।

होत कछू सन्देह जब सज्जन के हिय आय ।
अंतःकरण प्रवृत्ति ही देति ताहि निवटाय ॥२२॥

परंतु फिर भी इसकी उत्पत्ति का ठीक ठीक पता लगाऊँगा।

शकुन्तला (घबरा कर)—दई, दई पानी की बूँदों से डरा हुआ यह ढीठ भौंरा नई चमेली को छोड़ बार बार मेरे ही मुख पै आता है।

[भौंरे की बाधा दिखलाती है

दुष्यन्त (चित्त लगा कर देखता है)—इसका झाँकना भी अच्छा लगता है।

दोहा

उतही में मोरति दृगन आवत अलि जिहि ओर ।
सीखति है मुग्धा मनो भयमिस भृकुटि मरोर ॥२३॥

और भी—

[ईर्षा सी दिखला कर

सवैय्या ।

दृग चौंकत कोए चलें चहुधाँ अंग बारहि बार लगावत तू ।
लगि कानन गूँजत मंद कछू मनो मन की बात सुनावत तू ।
कर रोकती कौं अधरामृत लै रति कौं सुखसार उठावत तू,
हम खोजत जातिहि पांति मरे धनि रे धनि भौंर कहावत तू ॥२४॥

---

(२३) जिधर भौंरा आता है उधर ही मुँह फेरती है मानों भय का मिस करके मुग्धापन ही में भौंह चढ़ाना सीखती है।

(२४) चंचल कोयों में कंपती हुई आँखों को तू बार बार स्पर्श करता है कान के पास जाकर ऐसा धीरे धीरे गूंजता है मानो कुछ मरम की बात सुनावेगा जब तक तुझे हाथों से रोकती है तू होठों का रस ले जाता है अरे भौंरे तू धन्य है हम तो यही खोजते मरे कि यह किस जाति की बेटी है। (होठों के रस को कामी लोग रतिसर्वस्व कहते हैं)

शकुन्तला—यह ढीठ भौंरा मानेगा यहाँ से कहीं अंत चलूँ ।

[कटाक्ष करके दूसरी ठौर खड़ी होती है

यहाँ भी पापी ने पीछा न छोड़ा अब क्या करूँ सखियो इस दुष्ट से मुझे बचाओ ।

दोनों सखी (मुसका कर)—हम बचाने वाली कौन हैं राजा दुष्यंत की दुहाई दे वही बचावेगा क्योंकि तपोवनों की रक्षा राजा के सिर होती है ।

दुष्यंत (आप ही आप)—यह अवसर प्रगट होने का अच्छा है । मुझे डर किसका है । [इतना कह कर

परंतु इससे तो खुल जायगा कि मैं राजा हूँ अब हो सो हो इनसे बात-चीत करूँगा ।

शकुन्तला (थोड़ी दूर पर खड़ी हो कर)—हाय यहाँ आया अब कहाँ जाऊँ ।

दुष्यन्त (झटपट आगे बढ़कर)—

दोहा

जब लग जगपालक बन्यो जग में नृप पुरुवंस ।
सब विधि समरथ करन को दुष्ट जनन विध्वंस ॥
तब लग ऐसो कौन जो छोड़ि सजन की रीति ।
मुग्धा मुनिकन्यान में करतु कछूक अनीति ॥२५॥

(राजा को देख कर सब चकित सी होती हैं)

अनसूया—अजी यहाँ अनीति करने वाला तो कोई नहीं है, हमारी यह प्यारी सखी भौंरे ने घेरी थी इससे भय खा गई ।

[शकुन्तला की ओर दीठि करती है

(२५) जब तक मैं पुरुवंशी इस पृथ्वी का रखवाला बना हूँ तब तक कौन ऐसा है जो मुनियों के साथ अन्याय कर सके ।

दुष्यंत (शकुन्तला के सन्मुख आकर)—हे सुन्दरी तेरा तपोव्रत तो सफल है। [शकुंतला लजाती सी चुप खड़ी रहती है

अनसूया—तुम सरीखे पाहुने आये, अब तपोव्रत क्यों न सफल होगा। सखी शकुन्तला तू जा कुटी से कुछ फल-फूल समेत अर्घ ले आ पाँव धोने को जल तौ यहीं है।

[पेड़ सींचने के घड़े की ओर देखती है

दुष्यंत—तुम्हारे मीठे बोलों ही से अतिथिसत्कार हो गया।

प्रियम्वदा—तौ आवो पाहुने घड़ीक इस सप्तपर्ण के नीचे घनी छाया में शीतल चबूतरे पर बैठकर विश्राम ले लो।

दुष्यन्त—तुम भी तो इस काम से थक गई होगी।

अनसूया—(हौले शकुन्तला से)—अतिथि के पास बैठना हमको उचित है आओ यहाँ बैठो। [सब बैठती हैं

शकुन्तला (आप ही आप)—इस पुरुष को देख क्यों मेरे मन में ऐसी बात उपजती है जो तपोवन के योग्य नहीं।

दुष्यंत (एक एक करके सबको देखता है)—हे युवतियों समान वयसे और समान रूप में तुम्हारी आपस की प्रीति बड़ी अच्छी लगती है।

प्रियम्वदा (हौले हौले अनसूया से)—सखी अनसूया यह अतिथि कौन है जिसके रूप में चतुराई के साथ गम्भीरता और बोली में ऐसी मधुरता है, यह तौ कोई बड़ा प्रतापी जान पड़ता है।

अनसूया (हौले प्रियम्वदा से)—सखी मैं भी इसी सोच विचार में हूँ।

अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रकट) महात्मा तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो? और किस देश की प्रजा को बिरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो? क्या कारन है

जिससे तुमने अपने कोमल-गात को इस कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है ?

शकुन्तला—(आप ही आप)—अरे मन तू उतावला न हो धीरज धर तेरे हित की अनसूया ही पूछ रही है।

दुष्यन्त (आप ही आप)—अब मैं अपने को क्या बतलाऊँ और किस भाँति इसे धोखा देखकर आपको छुपाऊँ हो सो हो इससे यों कहूँगा। (प्रगट) हे ऋषिकुमारी पुरुवंशी राजा ने मुझे राज के धर्मकाज सौंप रक्खे हैं इसलिए आश्रम में आया हूँ कि देखूँ यहाँ तपस्वियों के कामों में कुछ विघ्न तो नहीं होता।

अनसूया—महात्मा तुम्हारे पधारने से धर्म्मचारी सनाथ हुए।

[शकुन्तला कुछ लज्जित और मोहित सी होती है

दोनों सखी—(शकुन्तला और दुष्यंत के भावों को जानकर)—हे शकुन्तला कदाचित आज पिताजी घर होते।

शकुन्तला—(रिस सी होकर)—तो क्या होता है ?

दोनों सखी—तो इस अनोखे पाहुने को प्यारी से प्यारी वस्तु देकर भी कृतार्थ करते।

शकुन्तला—चलो परे हो तुम मन से गढ़ कर बात कहती हो मैं तुम्हारी न सुनूँगी।

दुष्यन्त—(अनसूया और प्रियम्वदा से)—हे युवतियों अब मैं भी तुम्हारी सखी का वृत्तांत पूछता हूँ।

दोनों सखी—अजी यह भी तुम्हारा अनुग्रह है।

दुष्यन्त—कण्व महर्षि तो सदा के ब्रह्मचारी हैं फिर यह तुम्हारी सखी उनकी बेटी कैसे हुई ?

अनसूया—अजी सुनो कुशिकवंशी एक बड़ा प्रतापी राजर्षि है।

दुष्यन्त—हाँ मैंने भी सुना है।

अनसूया—उसी से हमारी सखी की उत्पत्ति जानो और कन्व जी इसके पिता इसलिये कहाते हैं कि पड़ी हुई को उठा लाए थे और उन्होंने पाली पनासी है।

दुष्यंत—पड़ी हुई यह सुन कर तौ मुझे अचम्भा होता है अब इसका वृत्तांत जड़ से सुनना चाहता हूँ।

अनसूया—अच्छा सुनो मैं कहती हूं। जब उस राजर्षि ने गौतमी तीर पर उग्र तप किया तौ कहते हैं कि देवताओं ने कुछ शंका मान तप बिगाड़ने वाली मेनका नाम अप्सरा उसके पास भेजी।

दुष्यंत—सच्च है देवता औरों की तपस्या से डर जाते हैं। भला फिर क्या हुआ।

अनसूया—वसंत के आरंभ में मेनका की उनमादिनी छवि निरखते ही— [इतना कह लज्जित होती है

दुष्यंत—आगे जो कुछ हुआ हमने जान लिया। तौ यह अप्सरा की बेटी है।

अनसूया—हाँ जी।

दुष्यंत—ठीक है नहीं तौ—

दोहा

कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ।
भूतल तें निकसति कहूँ विज्जुछटा की लोइ॥२६॥

[शकुन्तला सिर झुका कर बैठती है

शकुन्तला (आप ही आप) मनोकामना सिद्ध होने के लच्छन तौ दिखाई दिये हैं परंतु सखी ने वर मिलने की बात हँस कर

---

(२६) धरती से बिजली कभी नहीं निकलती ऐसे ही यह शकुन्तला मनुष्य जाति से उत्पन्न न हुई होगी।

कही थी इस्से दुवधा में पड़ के मेरा मन अधीर होता है।

प्रियम्वदा—(मुसकाती हुई पहले शकुन्तला की ओर फिर राजा की ओर देखकर) कुछ और पूछने की मन में दीखती है।

[शकुन्तला अंगुली से सखी को झिड़कती है

दुष्यंत—तुमने भली मेरे मन की जान ली। मुझे इस अनूठे चरित के सुन्ने की अभी और चाह है इसलिए कुछ पूछूंगा।

प्रियम्वदा—सोच विचार मत करो तपस्वियों से तो जो कोई चाहे निधड़क पूँछ सकता है।

दुष्यंत—मैं यही पूँछता हूँ कि—

सवैय्या।

रतिराज के काज विगारन को रिपु है बन को व्रत लोक कहे
यह सुन्दर प्यारी तिहारी सखी रहि है कहो कौ लग ताहि सहे।
तजि देहिगी व्याह भए पै किधौं जब पीतम आइके बाँह गहे
अपने से किधौं दृगवारी मृगीन में जन्म वितावति यों ही रहे ॥२७॥

प्रियम्वदा—अजी व्याह की क्या चलाई, हमारी सखी तो धर्म्म कर्म्म में भी पराए वश है तिस पर भी पिता का संकल्प है कि समान वर मिले तो इसे व्याहें।

दुष्यंत—(आप ही आप)—यह संकल्प पूरा होना तो कुछ कठिन नहीं है।

सोरठा।

रे मन तजि अब सोग दूर भयो संदेह सब।
कढ्यो धरन तन योग रतन जो मैं जान्यों अनल ॥२८॥

---

(२७) कामदेव के व्यवहारों का विगाड़ने वाला वैराग है सो तुम बतलाओ कि शकुन्तला इस वैराग को व्याह तक ही सहेगी अथवा जन्म भर अपनी सी आँखों वाली हरनियों में विना व्याही रहेगी।

(२८) हे हृदय अब प्रसन्न हो क्योंकि जिस को तू आग (अर्थात

शकुन्तला—(रिस सी होकर) ले अनसूया मैं तो जाती हूँ।

अनसूया—क्यों जाती है।

शकुन्तला—मैं गोतमी से जाकर कहूंगी कि प्रियम्वदा मुझसे अनकहनी बात कहती है।

अनसूया—हे सखी यह तो उचित नहीं है कि तू ऐसे अनोखे पाहुने को विना सत्कार किये छोड़ जाय—

[शकुन्तला विना उत्तर दिये चलने को होती है

दुष्यंत—(रोकने को उठता है परन्तु आप ही रुक जाता है) अहा कामी मनुष्यों के मन की बात बाहर के चिन्हों से प्रकट हो जाती है।

दोहा

मैं पाछे मुनिधीय के चह्यो चलन करि चाव।
मर्यादा आड़ी भई आगे दियो न पाव॥
आसन तें न उठ्यो तऊ ऐसो मोहि लखात।
मानो बैठ्यो आय फिर चलि के हाथ छः सात॥२६॥

प्रियंम्वदा—(शकुन्तला को रोक कर) सखी यहाँ से जाने न पावेगी।

शकुन्तला—(भौंह चढ़ा कर) क्यों?

प्रियम्वदा—क्योंकि अभी तुझे दो पौधे सींचने को और रहे हैं इस ऋण को चुका दे तब चली जाना—

[चलती हुई को बल कर रोकती है

ब्राह्मण की बेटी) समझा था सो तौ गले में पहनने योग्य रत्न निकला (अर्थात् शकुन्तला तो क्षत्री की लड़की निकली)

(२६) मुनिसुता के पीछे मैंने चलना चाहा परन्तु मर्यादा ने रोक लिया यद्यपि स्थान से उठा नहीं था तो भी ऐसा जानता हूँ मानो कुछ चलकर लौट आया।

दुष्यंत—वृक्ष सींचने ही से तुम्हारी सखी थकी सी दीखती है क्योंकि—

सवैय्या।

झुकी कंध रहे लिये गागरिया भई लाल हथेरी दुहू कर की
उचकें कुच जानि परे अजहू बढ़ि श्वास गई छतिया धरकी।
मुख छाय पसीनक बूँद रहीं न हिले न झुले कुलवा तरकी
कर एक लिये बिथुरी अलकें खुलि जूरेकी गाँठि तरे सरकी ॥३०॥

इसलिए लो यह ऋण मुझे यों चुकाने दो।

[अंगूठी देना चाहता है

(दुष्यंत का नाम अंगूठी पर बांचकर दोनों एक दूसरी की ओर निहारती हैं

दुष्यंत—इस के लेने में तुम यह संकोच मत करो कि यह राजा की वस्तु है क्योंकि मैं भी तो राजपुरुष हूँ मुझे यह राजा ही से मिली है।

प्रियम्वदा—तो महात्मा इसे अपनी अंगुली से न्यारी मत करो तुम्हारे कहने ही से ऋण चुक गया (मुसका कर) सखी शकुन्तला इस महात्मा ने अथवा महाराज ने दया करके तुझे ऋण से छुड़ा दिया अब तू चली जा।

शकुन्तला—(आप ही आप) जो अपने वश में रही तो (प्रगट) जाने की आज्ञा देने वाली अथवा रोकने वाली तू कौन है।

दुष्यंत—(शकुन्तला की ओर देखकर आप ही आप) जैसा मेरा मन इसमें उलझा है क्या इसका भी ऐसा ही मुझ में लगा

(३०) पानी सींचने की घड़ियाँ उठाते हथेली लाल हो गई है। स्तनों के उठने से जान पड़ता है कि परिश्रम से श्वास बढ़ गई है। तरकी अर्थात् कर्णफूल हिलना नहीं है क्योंकि पसीने से उसकी पंखड़ी कपोलपर चिपट गई है। जूड़े की गांठ खुल गई है इससे बालों को एक हाथ से थाम रही है।

है हो कि न हो मनोरथ सिद्ध होने के लच्छन तो दीखते है क्योंकि—

दोहा

यदपि मिलावत नाहि यह मो बातन में बात ।
कान धरति इतही तऊ जब मैं कछु बतरात ॥
होति न ठाढ़ी आयके मेरे संमुख बाल ।
तदपि न दूजी ओर कहुँ फेरति दीठि रसाल ॥३१॥

[नेपथ्य में

हे तपस्वियो आओ आश्रम के जीवों की रच्छा करो मृगया विहारी राजा दुष्यन्त निकट आ पहुँचा देखो—

दोहा

आले वल्कल बसन ये तपसिन डारे लाय ।
आश्रम के जिन तरुन पै डारन तें लटकाय ॥
तिनके ऊपर परति है उड़ि रज खुरतार ।
मानो टीड़ीदल गिरत साँझ अरुण की बार ॥३२॥

और देखो—

---

(३१) यद्यपि शकुन्तला मेरी बात में बात नहीं मिलाती तौ भी जब मैं कुछ कहता हूँ मेरी ही ओर कान लगाती है और यद्यपि मेरे सामने मुख नहीं करती तौ भी बहुधा दूसरी ओर नहीं देखती ।

(३२) घोड़ों की खुरतार से (गेरुए रङ्ग की) धूल उड़ उड़ कर वृक्षों पर सूखते हुए ओले वस्त्रों में ऐसी गिरती है मानों सन्ध्या की अरुणित में चमकता हुआ टीड़ीदल ।

सवैय्या

रथ देखि मतङ्ग डर्‌यो वन को यह माहि तपोबन आवत है ।
पत्त लंगर बेलि बनाय मनो हरिनान के झुंड भगावत है ॥
तपकों बनि मूरति विघ्न किधों बलसों तरु तोरत धावत है ।
मुख मोरि निहारत पाछें जबे रद कंध सों एक लगावत है ॥३३॥

[ऋषि कुमारी कान लगाकर सुनती हैं और चौंकती हैं

दुष्यंत—(आप ही आप) अरे पुरवासियो धिक्कार है तुम को कि तुमने मुझे ढूँढ़ते ढूँढ़ते यहाँ आकर तपोवन में विघ्न डाला । अब मुझे इनके पास जाना पड़ा ।

दोनों सखी—अजी अब तो हमें इस कुलाहल से घबड़ाती हैं आज्ञा दो तो अपनी कुटी को जायें ।

दुष्यंत—(बेग बेग) तुम जाओ मैं भी ऐसा उपाय करूँगा जिससे तपोवन में विघ्न न होने पावे ।

[सब बैठती हैं

दोनों सखी—हे महात्मा ! जैसा अतिथिसत्कार होना चाहिए हम से नहीं बना इसलिये हम यह कहते लजाती हैं कि कभी फिर दर्शन देना ।

दुष्यंत—नहीं नहीं यह बात नहीं है तुम्हारे देखने ही से हमारा सत्कार हो गया ।

शकुन्तला—हे अनसूया एक तो मेरे पाँव में नई दाभ को

(३३) यह बन का हाथी राजा के रथ से डरा हुआ हरिनों को व्याकुल करता तपोवन में हमारी तपस्या के लिये विघ्न की मूर्ति बन कर वृक्षों को तोड़ता और पैरों में लता का लंगर डाले घूमता आता है जब पीछे की ओर देखता है तो एक दाँत कंधे से लगा लेता है ।

अनी लगी है दूसरे कुर की डाल में अंचल उलझा है नेक ठेरा तो मैं इनसे निबट लूँ।

(दुष्यन्त ही की ओर देखती हुई और मिस करके ठिठकती हुई सखियों समेत जाती है)

दुष्यन्त—अब मुझे नगर की ओर जाने की तो चाह रही नहीं इसलिये साथ वालों को डेरा तपोवन के निकट ही कराऊँगा शकुन्तला के प्रेमव्यवहार से मैं अपना छुटकारा नहीं देखता।

दोहा

तन तौ आगे चलत हैं मन नहि सङ्ग लगात।
उड़त पताकापाट ज्यों मारुत सौंहीं जात ॥३४॥

[सब जाते हैं

---

(३४) शरीर तो मेरा आगे को चलता है परंतु मन पीछे रहा जाता है जैसे पवन के सन्मुख चलने में झंडी की ध्वजा पीछे ही को फैराती है।

अङ्क २

स्थान वन के समीप राजा का डेरा

उदास रूप में माढव्य आता है।

माढव्य—(ऊँची श्वास लेकर) इस मृगयाशील राजा की मित्रता से हाय हम तो बड़े दुखी हैं दुपहरी में भी यह मृग आया वह वाराह गया उधर शार्दूल जाता है यही कहते इस वन से उस में उससे इसमें भागना पड़ता है ग्रीषम में कहीं वृक्ष की छाया भी इतनी नहीं मिलती जहाँ कुछ विश्राम लिया जाय। पहाड़ की नदियों में वृक्षों के पत्ते गिर कर सड़ गये हैं। प्यास लगे तो उन्हीं का बेस्वाद पानी पीना पड़ता है और खाने को बहुधा शूल पर भुना हुआ माँस मिलता है सो भी कुसमय। घोड़े के साथ दौड़ते दौड़ते देह ऐसी शिथिल हो जाती है कि रात में भी सोना नहीं मिलता और जो कुछ नींद आई भी तो बड़े तड़के ही दासी जाये चिड़ीमार चलो वन को चलो वन को यह चिल्ला कर मुझे जगा देते हैं ये दुःख तो थे ही तब तक घाव में नया घाव और लगा कि कल हम से बिछुड़ कर राजा मृग के पीछे चलता चलता तपस्वियों के आश्रम में पहुँचा वहाँ मेरे अभाग्य से उस की दृष्टि एक तपस्वी की कन्या पर जिसका नाम शकुन्तला है पड़ गई है अब नगर को लौटना कैसा उसी के सोच में आज रात भर स्वामी की आँख नहीं लगी अब क्या किया जाय जब तक राजा को नित्य कर्म करता हुआ देख न लूँगा न जाने क्या गति मेरी होगी (घूमकर और देखता है) सखा तो यह आता है और वन में फूलों की माला पहने हुए धनुषधारिन यवनी भी साथ हैं। आता तो इधर ही है अब मैं भी अंग भंग करके लँगड़ा हो जाऊँ (लाठी टेककर खड़ा होता है) चलो यों ही विश्राम सही। (ऊपर कही हुई स्त्रियों सहित दुष्यन्त आता है)

दुष्यन्त—

दोहा

प्रिया मिलन दुर्लभ तऊ लखि लखि वाके भाव ।
मेरे हिय उपजत खरो मिलवेही को चाव ॥
पूरो यदपि भयो नहीं मन चीत्यो रतिनाह ।
पै संगम सुख लैन को रही दहन चित चाह ॥३५॥

[मुसका कर

जब किसी की किसी से लगी हो और वह अपने मन की चाह से उसके मन की चाह अनुमान करे तो ऐसा ही धोखा खाता है ।

चौपाई

यदपि निहारि और ही औरी । प्रेम दीठि प्यारी ने मेरी ॥
मंद चली यदि भार नितम्बा । मनहु ललित गति करति विलम्बा ॥
मारग रोकि सखी जब लीनो । भिरकि ताहि रिससों यदि दीनों ॥
मेरेहि काज कियो सब वा ने । अहा कामि स्वारथ पहचाने ॥३६॥

माढव्य (जैसे खड़ा था वैसे ही खड़ा है)—हे मित्र मेरे हाथ नहीं उठते इसलिये वचनों ही से आशीर्वाद देता हूँ तुम्हारी जय रहे ।

---

(३५) प्यारी का मिलना तो कठिन है परन्तु उसके भाव देख कर मुझे विश्वास होता है कि मिलेगी क्योंकि यद्यपि कामदेव का कारज सिद्ध नहीं हुआ परन्तु हम दोनों के मन में मिलने की चाह है ।

(३६) उसने चाहे और ही ओर देखा हो परंतु मैंने यही जाना कि मुझी पर स्नेह की दृष्टि की है वह चाहे नितम्बों के बोझ ही से मंदगति चली हो परंतु मैंने यही समझा कि मुझे दिखाने को अठखेली करती है फिर जब उसे सखी ने चलने से रोका तब वह चाहे रिस ही हुई हो परंतु मेरे मन में यही भासी कि यह भी कुच कटाक्ष मुझी पर है सत्य है अपना प्रयोजन देखने में प्रेमीजनों की दृष्टि बड़ी पैनी होती है ।

दुष्यंत—कहो सखा तुम्हारा अंग भंग क्यों हुआ ।

माढव्य—अपनी अंगुली से आँख कुचा कर आपही पूछते हो कि आँसू क्यों आये ।

दुष्यंत—हम नहीं समझे अब फिर समझा कर कहो ।

माढव्य—देखो यह बेत कुब्जों की होड करता है सो कहो अपने बल से करता है अथवा नदी प्रवाह से ।

दुष्यंत—नदी के प्रवाह से झुका है ।

माढव्य—ऐसे ही मेरे अंग भंग के भी तुम्हीं कारण हो ।

दुष्यंत—क्योंकर ।

माढव्य—तुम तो अब राज-काज छोड़ इस भयंकर निरजन वन में बसकर अहेरियों के काम करोगे परंतु मैं सत्य ही कहता हूँ कि जंगली पशुओं के पीछे दिन प्रतिदिन भागते भागते मेरे अंगों के जोड़ छिन्न गये हैं इसलिये दया करके मुझे एक दिन तो विश्राम लेने को छोड़ जावो ।

दुष्यंत—(आप ही आप) यह तो यों कहता है उधर मेरा चित्त भी ऋषिकुमारी की सुध में आखेट से निरुत्साह हो गया है क्योंकि—

सोरठा

सर चढ़ाय यह चाप, तानि सकत नहिं मृगन पै ।
जिन सिखई प्रिय आप, भोरि चितवनि संग बसि ॥२७॥

माढव्य—(राजा के मुख की ओर देख कर) तुम्हारे मन में जाने क्या है मेरी बात तो ऐसी हो गई जैसे वन में रोना ।

दुष्यंत—(मुसकाकर) मेरे मन में यही है कि अपने सखा की बात मानूँ ।

(२७) जिन मृगों ने शकुन्तला को भोली चितवन सिखाई है उन पै धनुष चढ़ा कर बाण चलाय नहीं सकूँगा ।

माढव्य—तुम्हारी वड़ी आयुवल हो।

[उठकर चलना चाहता है

दुष्यंत—मित्र ठैर अभी हम को कुछ और कहना है सो सुन ले।

माढव्य—कहिये।

दुष्यंत—जब तू विश्राम ले चुके तब हम एक ऐसे काम में तुझ से सहायता लेंगे जिस में कुछ दौड़ना भागना न पड़ेगा।

माढव्य—क्या लड्डू खिलावोगे।

दुष्यंत—अभी कहता हूं।

दुष्यंत—कोई यहां है।　　　　[द्वारपाल आता है

द्वारपाल—स्वामी की क्या आज्ञा है।

दुष्यंत—रैवतक तुम सेनापति को बुला लाओ।

द्वारपाल—बहुत अच्छा (बाहर जाकर सेनापातिसहित आता है)—आओ महराज कुछ आज्ञा देने के लिए तुम्हारी बाट देखते हैं।

सेनापति (दुष्यन्त की ओर देखकर)—मृगया को दोष तो देते हैं परन्तु हमारे स्वामी को तौ गुण दायक ही हुई है।

चौपाई

नरपति देह अधिक बलवाना। दीरघ गिरिचर नाग समाना॥
भए क्रूर अगले अँग जाके। खेंचत बार बार धनवा कै॥
व्यापत श्रम न पसीना लावे। धूर लगता कछु खेद न पावे॥
भई यदपि नैसुक दुवराई। बड़े डील नहिं देत दिखाई॥३८॥

(३८) बार बार धनुष खैंचने से महाराज का अगला शरीर ऐसा कड़ा हो गया है जैसे पहाड़ के हाथी का, अब धूप नहीं व्यापता न थोड़े परिश्रम से थकावट का क्लेश होता है न पसीना आता है दौड़ धूप से कुछ दुबलाई तो आ गई है परन्तु बड़े शरीर में दिखाई नहीं देती।

(राजा के निकट जाकर)—स्वामी की जय हो। महाराज वन में आखेटी पशुओं के खोज देखे गए हैं आप कैसे बैठे हैं।

दुष्यंत—इस माढव्य ने निन्दा करके मृगया में मेरा उत्साह मंदा कर दिया है।

सेनापति (हौले माढव्य से)—सखा तू अपनी बात पर बना रह अब मैं ठकुरसुहाती कहूंगा (प्रगट) महाराज इस रांडके को बकने दीजिये भला इस के तो आपही प्रमाण हैं कि मृगया में कितने गुण होते हैं।

सवैय्या

कछु मेद घटे अरु तुन्दि घटे छुटि के तन धावन जोग बने।
चितवृत्ति पसून की जानि परे भय क्रोध में लेत लपेट घने॥
अति कौरति है धनुधारिन की चलतो यदि बान ने बेझो हने।
मृगया ते भलो न विनोद कोई ताहि दूषन माहि वृथा ही गने।३६॥

माढव्य—(रिस से) अरे राजा ने तो मृगया छोड़ दी तुझे क्या हुआ है जो ऐसी बातें कह कर फिर उत्साह दिलाता है तू वन में बहुत दौड़ता फिरता है कहीं मनुष्यों की नाक के लोभी किसी बूढ़े रीछ के मुंह में न पड़ जाय।

दुष्यंत—हे सेनापति यह आश्रम का समीप है इसलिए हम आखेट की बड़ाई करने में तुम्हारा पक्ष नहीं ले सकते आज तो

चौपाई

भैंसन देहु करन रंगरेली। सींग पखारि कुण्ड विच केली॥
हरिन यूथ रूखन तर आवैं। बैठ जुगार करत सुख पावैं॥
शूकर वृन्द डहर में जाईं। खोद निडर मोथाजर खाईं॥
शिथिल प्रत्यञ्चा धनुप हमारो। आज त्यागि श्रम होइ सुखारो॥४०॥

सेनापति—जो इच्छा महाराज की।

दुष्यंत—आगे जो आखेटी लोग बढ़ गए हैं उन्हें लौटा लो और सेना वालों को वरज दो कि तपोवन में कुछ विघ्न न डालें क्योंकि—

दोहा

शांति भाव तपसीन में यद्यपि होत प्रधान।
गुप्ततेज राखत तऊ अंतर अग्नि समान॥
ज्यों शीतल रविकांतमणि छूवति करति न दाह।
भानु तेज तें त्रास लहि उगलति ज्वाला प्रवाह॥४१॥

सेनापति—जो आज्ञा स्वामी की।

माढव्य—चल जा दासीजाय तेरा उत्साह दिलाना निष्फल हुआ। [सेनापति जाता है।

---

(४०) भैसों का आनन्द से पोखरों में तैरने दो हरिणों को घनी छाया में बैठ कर रोंथ करने दो सूअरों को अधसूखे तालों में मोथे की ज़ड़ खोद खाने दो और मेरे धनुष की प्रत्यञ्चा ढीली हो गई आज इसे भी विश्राम लेने दो।

(४१) तपस्वियों का स्वभाव ऐसा होता है जैसा सूर्य्यकान्तमणि अग्नि उगलती है यद्यपि इसमें शान्तिभाव मुख्य है परन्तु अन्तर में तेज भी ऐसा रखते हैं जैसे भस्म करने वाली अग्नि।

दुष्यन्त—(दासियों की ओर देख कर)—तुम भी अपना आखेट भेष उतार डालो और हे रैवतक तू अपने काम पर सावधान रह।

सब सेवक—जो आज्ञा महाराज की। [सब जाते हैं

माढव्य—इन मक्खियों को तो आपने भला यहाँ से दूर किया अब सुन्दर वृक्षों की छाया में इस शिला पर बैठिये मैं भी सुख से विश्राम लूँगा।

दुष्यंत—आगे तुही चल।

माढव्य—आइये। [दोनों जाकर बैठते हैं

दुष्यंत—अरे माढव्य तुझे आँखों का क्या फल मिला जब कि तैंने देखने योग्य पदार्थों में सबसे उत्तम को तो देखा ही नहीं

माढव्य—क्या तेरे सामने महाराज नित्त नहीं रहते।

दुष्यंत—अरे अपने को तो सभी अच्छा जानते हैं परन्तु मैं तुझ से उस शकुन्तला के मद्ध कहता हूं जो आश्रम की शोभा है।

माढव्य—(आप ही आप)—मैं इस को इस विषय में कुछ कहने का अवसर न दूंगा (प्रगट) हे मित्र जो वह तपस्वी की बेटी है तो तुम्हारे ब्याहने योग्य नहीं फिर उसके देखने से क्या प्रयोजन।

दुष्यंत—हे सखा पुरुवंशियों का मन अनीति वस्तु पर कभी

गई बिना पय प्याय भूमि पर डारि अकेली।
परी डार तें छूटी आक पै मनहु चमेली॥
मुनि निकसे तहं आय गोद लै लीनी सुहिता।
पालो पिता कहाय नाय यातें मुनि दुहिता॥४२॥

माढव्य—(हँसकर) जैसे किसी की रुचि छुहारों से हट कर अमली पर लगे तुम रनवास के स्त्री रत्नों को छोड़ उस पर आसक्त हुए हो।

दुष्यंत—हे सखा जो तू उसे एक बेर देखले तौ फिर ऐसी न कहे।

माढव्य—जब तुम को भी उसके देखने से अचम्भा हुआ है तो वह निस्संदेह रूपवती होगी।

दुष्यंत—(मुसकाकर) बहुत क्या कहूँ।

सवैय्या

पहले लिखि चित्र के माहि किधों वाहि प्राण अधार विरंच दयो।
धरि के सुखमा चित्त कै सब ही एक रूप अनूप बनाय लयो॥
जब सोचत हूँ विधि को बल मैं अरु वा तिय की रंग ढङ्ग ठयो।
तब भासति है मन माहिं यही कमला को नयो अवतार भयो॥४३॥

माढव्य—जो ऐसी है तो उससे आगे सब रूपवती निरादर हैं।

दुष्यंत—मेरे चित्त में तौ ऐसी ही है।

अप्सरा थी जो जन्ते ही उसे बन में डाल चली गई दैवयोग से वहाँ कन्व मुनि आ निकले पड़ी देख उनके मन दया आई गोद में उठाकर आश्रम में ले गए और बेटी की भाँति पाली।

(४३) ब्रह्मा ने पहले चित्र में लिख कर अथवा सब रूपवतियों को ध्यान में लाकर एक मूरत बनाई होगी और फिर उस चित्र अथवा मूरत में जीव डाला होगा इस भाँति शकुन्तला होगी मेरे जान तो वह दूसरी लक्ष्मी है।

सवैय्या

यह तौ निरदोषित रूप तिया विन सूंघ्यो मनो कोई फूल नयो
नवपल्लव कै नखहू न लग्यो कोई रत्न किधों जो विध्यो न गयो
फल पुन्न को है अखंड किधों मधु है सद कै विन स्वाद लयो
विधना मति मोहि न जानि परे ताहि चाहत कौन के भागि दयो ॥४४

माढव्य—तौ तुम उसे वेग व्याह लो नहीं तौ अखंड पुण्य का फल किसी हिंगोट का तेल लगे हुए चिकने सिर वाले जोगी के हाथ पड़ जायगा।

दुष्यंत—मित्र वह परवश है और उसका पिता घर नहीं है।

माढव्य—भला तुम में उसका अनुराग कैसा जान पड़ा।

दुष्यंत—सुन तपस्वियों की कन्या स्वभाव की सकुचीली होती हैं तौ भी—

दोहा

मेरे संमुख होत ही फेरी दीठि सुजान।
फिर काहू मिस तें करी मधुर मधुर मुसकान॥
प्रगट प्रीति नहिं कह सकी अधिक सताई लाज।
तौहू गुप्त रह्यो नहीं मदनदेव को काज॥४५॥

माढव्य—और क्या देखते ही तुम्हारी गोद में आ बैठती

---

(४४) उसका रूप ऐसा निर्दोषित है जैसे विना सूंघा फूल जैसे विना टूटी नई कोंपल जैसे विना विधा रत्न जैसे विना चक्खा नया मधु जैसे पुन्यों का अखंड फल परन्तु मैं नहीं जानता कि विधाता उसे किस के हाथ लगावेगा।

(४५) कामदेव के प्रेम व्यवहार को लाज की मारी भी छुपा न सकी क्योंकि मेरी ओर से यद्यपि दीठ फेर ली परन्तु किसी मिस से मुसका भी गई।

दुष्यन्त—फिर जब चलने लगी तौ लाज में भी उस सुन्दरी का प्रीति भाव मुझमें दिखाई दिया।

दोहा

चलि अबला कछु दूर लों ठैरि गई मग माहि।
कहति दाभ काँटों लग्यो यदपि दाभ तहँ नाहि॥
उरझ्यो काहू रूख में कहूँ न बलकल चीर।
सुरझावन मिस के तऊ ठिठकी मीर शरीर॥४६॥

माढव्य—तौ अब यहाँ खाने पीने की सामग्री इकट्ठी कर लो क्योंकि मैं देखता हूँ तुमने तपोवन को उपवन बना लिया।

दुष्यन्त—हे सखा किसी किसी तपस्वी ने मुझे पहचान लिया है अब विचार तौ किस मिस से फिर आश्रम में जाऊँ।

माढव्य—और क्या मिस चाहिये तुम तौ राजा हो।

दुष्यन्त—राजा हैं तौ क्या।

माढव्य—तपस्वियों से कहो कि वन के अन्न से हमारा छठा भाग लाओ।

दुष्यन्त—हे मूर्ख ये तपस्वी तौ हम को और ही भाग ऐसे देते हैं जिसके आगे रत्नों का ढेर भी तुच्छ है देख—

दोहा

और वर्ण तें लेत नृप सो धन विनसन जोग।
छटो अंस तप को अमर देत जु तपसी लोग॥४७॥

---

(४६) यद्यपि वहाँ दाभ का नाम भी न था तो भी थोड़ी दूर चल कर खड़ी हो गई और कहने लगी कि हाय मेरे पैर में दाभ का काँटा लगा और यद्यपि किसी पेड़ में कपड़ा नहीं उलझा था तो भी वलकल चीर उलझने के मिस मेरी ओर मुख करके ठिठक गई।

(४७) जो कर राजा और वरणों से लेता है वह सब मिट जाता है परन्तु जो आशीर्वाद तपस्वियों से मिलता है वह अजर अमर है।

(नेपथ्य में)—अहा हमारा तो मनोरथ सिद्ध हो गया।

दुष्यन्त (कान लगा कर)—यह तो धीर शांत बोल तपस्वियों का सा है।

[द्वारपाल आता है।

द्वारपाल—स्वामी की जय हो हे देव दो ऋषिकुमार द्वार पर आए हैं।

दुष्यन्त—तुरन्त लाओ।

द्वारपाल—अभी लाता हूँ (बाहर जाता है और ऋषिकुमारों को साथ लिये फिर आता है) इधर आओ इधर आओ।

| दोनों राजा की ओर देखते हैं।

पहला ऋषिकुमार—अहा इस राजा का शरीर यद्यपि जाजुल्यमान है परन्तु हम को फिर भी इसमें अत्यन्त विश्वास होता है क्यों न हो यह भी तो ऋषियों ही की भाँति रहता है।

चौपाई

त्यागि नगर याहू ने दे दीनो। आश्रम आय बास अब लीनो।
करि पालन परजा अपनी को। संचय करत यहू तपही को॥
ऋषि पदवी पावत अति नीकी। पहुँची सुरपुर याहु जती की।
चारन वृंद ताहि तँह गावें। आगे राज शब्द एक लावें॥४८॥

दूसरा—हे गौतम क्या यह इन्द्र का सखा दुष्यन्त है ?

पहला—हाँ यही है।

---

(४८) यह राजा भी ऋषियों से घाट नहीं क्योंकि इसने नगर छोड़ आश्रम में वास लिया है और अपनी प्रजा का पालन करता है यही इसके लिये तप है इसको स्वर्ग से चारन लोग अपनी अपनी स्त्रियों सहित ऋषि कह कर गाते हैं केवल राज शब्द आगे रख लेते हैं जिसमें राजर्षि नाम हो जाता है।

दूसरा—इसी से।

सीमा श्याम वारिनिधि जाकी। ता भुमि कों भोगत एकाकी।
तौ अचरज यामे कछु नाहीं। नगर द्वार अरगल सम बाहीं॥
जाके एक चढ़े धनवा में। दूजे कठिन वज्र मघवा में।
धरत आस सब देव समाजा। असुरन कों रन जीतन काजा॥४९॥

दोनों—(राजा के निकट जाकर) महाराज को जय हो।

दुष्यंत—(आसन से उठ कर) तुम दोनों को प्रणाम है।

दोनों—(फूल भेट करते हैं) तुम्हारा कल्याण हो।

दुष्यंत—(प्रणाम करके भेंट लेता है) क्या आज्ञा है ?

दोनों—महाराज आश्रमवासियों ने यह जान कर कि तुम यहीं ठैरे हो कुछ प्रार्थना की है।

दुष्यंत—क्या कृपा की है।

दोनों—हमारे गुरु कन्व ऋषि यहाँ नहीं हैं इससे राक्षस आकर यज्ञ में विघ्न डालते हैं सो तुम सारथी समेत कुछ रात इस आश्रम को सनाथ करो।

दुष्यंत—यह तौ मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया।

माढव्य—(सैन देकर) अब तौ मनोकामना पूरी हुई।

दुष्यंत—(मुसका कर) रैवतक तू सारथी को आज्ञा दे कि रथ लावे और धनुषबान भी लेता आवे।

द्वारपाल—जो आज्ञा।

[बाहर जाता है।

---

(४९) तो फिर क्या आश्चर्य है कि अकेला नगर द्वार की अर्गला समान अपनी लम्बी बाहों से समुद्र पर्य्यन्त सब पृथ्वी पर राज करता है स्वर्ग में देवता इन्द्र के वज्र और इसी के धनुष से लड़ाई में अपने वैरी दैत्यों पर विजय पाने की आशा रखते हैं।

दोनों—(हर्ष से)

दोहा

चलत लीक पुरखान की करत तिनहि के काज।
उचित तुम्हें यातें यही धर्म्मध्वज महराज॥
सरनागत दुखियान कों दैन अभय को दान।
नित कंकन बाँधे रहत पुरबंशी यजमान॥५०॥

दुष्यन्त—(प्रणाम करके) तुम चलो मैं भी तुम्हारे पीछे आया।

दोनों—सदा जय रहे। [दोनों जाते हैं।

दुष्यंत—माढव्य क्या तेरे मन में भी शकुन्तला देखने की चाह है।

माढव्य—पहले तो बड़ी उमंग थी परन्तु जब से राक्षसों का नाम सुना तब से नहीं रहा।

दुष्यन्त—डरता क्यों है हमारे पास रह।

माढव्य—तो तुम्हारा चक्र-रक्षित बनूँगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल—महाराज रथ आ गया है और माजी की कुछ आज्ञा लेकर करभक दूत भी नगर से आया है।

दुष्यंत—(सत्कार करके) क्या माता का पठाया आया है।

द्वारपाल—हाँ प्रभू।

दुष्यंत—तो उसे लाओ।

---

(५०) हे राजा तुम अपने पुरखों की रीति पर चलते हो और उन्हीं के से काम करते हो इससे तुमको आश्रम की रक्षा करना ही योग्य है यह बात प्रसिद्ध है कि सरनागतों का दुख दूर करने को पुरुवंश के लोग सदा कटिबद्ध रहते हैं।

द्वारपाल—जो आज्ञा (बाहर जाता है और फिर करभक समेत आता है) महाराज इधर हैं सन्मुख जा।

करभक—स्वामी की जय हो देव माजी ने आज्ञा की है कि आज से चौथे दिन पुत्र पिण्डापालन उपास होगा उस समय तुम चिरजीव भी अवश्य आकर हम को प्रसन्न करना।

दुष्यन्त—इधर तौ तपस्वियों का काम उधर बड़ों की आज्ञा इनमें से कोई उल्लंघन योग्य नहीं है अब क्या करना चाहिये।

माढव्य—(हँस कर)—अब त्रिशंकु बन कर यहीं ठैरो* ।

दुष्यन्त—इस समय मैं सचमुच व्याकुल हूँ।

दोहा

दूर दूर पै काज द्वै परे एक संग आय।
ऊकन जोग न एक हू इन में परत लखाय॥
याही तें मेरो हियो सोचत भयो अधीर।
मनहु शिला तें रुकि वह्यौ द्वैधा सरिता नीर॥५१॥

(सोच कर)—हे सखा तुझ से भी तौ माजी पुत्र कह कर बोली हैं इससे तुही नगर को जा और हमारी ओर से माजी से यह कर कि हम को तपस्वियों का कारज करना अवश्य है तू वही काम कीजो जो पुत्र करता है।

---

*त्रिशंकु की कथा प्रसिद्ध है कि वह अयोध्या का राजा था, वशिष्ठ मुनि के बेटों के शाप से चाण्डाल हुआ परन्तु विश्वामित्र ने प्रसन्न हो कर उसे देह समेत स्वर्ग भेजना चाहा जब स्वर्ग के समीप पहुँचा देवताओं ने नीचे गिरा दिया परन्तु विश्वामित्र ने पृथ्वी पर न आने दिया तब से वह धरती और स्वर्ग के बीच में अब तक लटकता है।

(५१) दूर दूर पर दो काम करने को हैं और दोनों ही अवश्य हैं इस सोच विचार में मेरा मन ऐसा बट रहा है जैसे शिला से टकरा कर नदी की धार बट जाती है।

माढव्य—यह तो सब करूँगा परंतु तुम कहीं ऐसा तो नहीं समझे कि मैं राक्षसों से डर गया।

दुष्यन्त—(मुसका कर) नहीं नहीं तू तो बड़ा ब्राह्मण है ऐसा हम क्यों समझेंगे।

माढव्य—तो अब मुझे राजा के छोटे भाई की भाँति जाना चाहिये।

दुष्यन्त—हाँ इसीलिये यह सब भीड़ भी तेरे साथ भेजता हूँ तपोवन से विघ्न का दूर ही रहना अच्छा है।

माढव्य (ऊँचा सिर करके)—तो तो मैं अब युवराज ही हो गया।

दुष्यन्त—(आप ही आप)—यह बड़ा चपल है कहीं हमारी लगन का वृत्तांत रनवास में न जा कहे इसलिये इससे यों कहूँ (माढव्य का हाथ पकड़ कर प्रगट) हे मित्र मैं केवल ऋषियों का बड़प्पन रखने इस तपोवन में जाता हूँ तू यह निश्चय जान की तपस्वी की कन्या शकुन्तला में मेरी चाह नहीं है भला देख तो—

कह हम अरु वह तिय कहाँ पली जु हरिनिन संग।
जानति है दुखिया कहा कैसौ मदन प्रसंग॥
मैं तासों वाकी कछू करी सखा बतरानि।
सो हाँसी की बात ही साँच न लीजो मानि॥५२॥

माढव्य—सत्य है। [सब जाते हैं

दूसरा अङ्क समाप्त हुआ।

---

(५२) कहाँ हम और कहाँ वह लड़की जो हरिनियों के साथ जन्म से रही है भला वह वन की रहने वाली श्रृङ्गार रस की बातों को क्या जाने मैंने जो तुझसे उसके मद्दे बात कही थी वह केवल मन बहलाने की कहानी थी तू उसे सच्ची मत मानना।

तीसरे अङ्क का विष्कम्भ

स्थान तपोवन

(ऋत्विज ब्राह्मण का शिष्य हाथ में कुछ लिये आता है ।)

अहा दुष्यंत बड़ा प्रतापी राजा है जिसके चरन वन में आते ही हमारे सब धर्म्म कार्य्य निर्विघ्न होने लगे ।

दोहा

बान चढ़ावन को कहा करि मुरवी टंकार ।
हरत दूर ही तें विघन मनहु चापहुंकार ॥५३॥

अब चलूँ वेदी पर बिछाने के लिए ये दाभ मुझे ऋत्विज ब्राह्मणों को देने हैं (फिर कर और इधर उधर देख कर) हे प्रियम्वदा तू किस के लिये उसीर का लेप और नालसहित कमल पत्ते लिये जाती है । (कान लगाकर) क्या कहा धूप लगने से शकुंतला बहुत व्याकुल हो गई है उसके शरीर पर लगाने को ठंडाई लिये जाती हूँ । अच्छा तो जा बहुत जतन से उपाय करना क्योंकि वह कन्या गुरु कन्व का प्राण है मैं भी अभी गौतमी के हाथ यज्ञ मंत्र का शांति जल भेजता हूँ ।

[जाता है

इति विष्कम्भ ।

---

(५३) धनुष पर बाण चलाना तो दूर रहा केवल प्रत्यंचा की फटकार ही से सब विघ्न मिट गए जैसे धनुष की हुँकार अर्थात् घोर ही से बहुधा भय दूर हो जाता है ।

अङ्क ३

आसक्त मनुष्यों की सी दशा में दुष्यन्त आता है।

दुष्यन्त—(ऊँची श्वास लेकर)—

दोहा

जानत हूँ तपबल बड़ो अरु परबस वह तीय।
तदपि न वांसों हटि सके मेरो ब्याकुल हीय॥
फिरत न पीछे नीर ज्यों भूमि निमानी जाय।
सो गति मो मन की भई कीजे कौन उपाय॥५४॥

हे कुसुमायुध तू और चन्द्रमा हम प्रेमीजनों को विश्वास-घाती हो।

शिखरनी

हिमांशू चंदा सो कुसुमशर तोसों कहत क्यों।
नहीं साँचे दोऊ इन गुनन मोसे जनन कों॥
खरी छोड़े ज्वाला वह किरिन पाला सङ्ग धरी।
तुहू वज्राकारी निज समन के बानन करे॥५५॥

हे कन्दर्प तुझे मेरे ऊपर क्यों दया नहीं आती। (मदनबाधा सी देखता हुआ) तेरे कुसुमबान की अनी ऐसी पैनी क्यों हुई। हाँ जाना।

---

(५४) मैं तप के प्रभाव को जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि शकुन्तला पराये वश है फिर भी मेरा मन उससे हटता नहीं जैसे नीची धरती में जाकर पानी पीछे नहीं लौटता।

(५५) हे कामदेव तुझे फूल के बानों वाला और चन्द्रमा को शीतल किरणों वाला कहना मुझ सरीखे मनुष्यों के लिए असत्य दीखता है क्योंकि तेरे बान तो वज्र समान कठोर हैं और चन्द्रमा की ठंडी किरणों में आग भरी है।

दोहा

अग्नि अजों हरकोप को दहकति है तो माहि।
जैसे वड़वा समुद्र में संशय नैकहु नाहि॥
जो हेतु न होतो यही तौ कैसे तू आप।
भसम भयो मोसे जनन देतौ ऐतो ताप ॥५६॥

फिर भी

दोहा

मनबाधा यद्यपि करत तु मकरध्वज नित्त।
कल न देत एकहु घरी व्याकुल राखत चित्त॥
तदपि गिनूँ तेरो यहू बहुत बड़ो उपकार।
वा मदलोचनि कारने जो तू करत प्रहार ॥५७॥

हे पंचशर मैंने तेरी बहुत स्तुति की परंतु तू मुझ पर दयालु न हुआ।

शिखरनी

वृथा तोको मैंने वल नियम सौं करि दियो।
कियो मेरो योंही सव रतिपति निष्फल गयो॥

---

(५६) महादेव के कोप की अग्नि तुझ में अब तक दहकती है क्योंकि ऐसा न होता तो भस्म हो चुका था कामी जनों को क्यों इतना ताप दे सकता।

(५७) हे मकरध्वज तू मेरे मन को बाधा तो देता है परन्तु मैं फिर भी तेरा उपकार ही मानता हूँ क्योंकि तू उसी मदलोचनी के कारण मेरे ऊपर बान छोड़ता है।

(५८) यज्ञ में कामदेव को भाग नहीं मिलता जैसा कि और देवताओं को मिलता है परन्तु कामीजनों के नियम और व्रत कामदेव को पुष्ट करते हैं इसलिए दुष्यन्त कहता है कि हे कामदेव मैंने वृथा ही

यही सोहे तू लै अब धनुष खेंचे करन लों।
करे बेझो मेरो हिय शर चलावे जतन सों ॥५८॥

(खेदित सा इधर उधर फिरता है) हाय जब यज्ञ समाप्त होगा ऋषियों से विदा होकर मैं कहाँ अपने दुखी जीव को ले जाऊँगा। (गहरी साँस लेकर) प्रिया के दर्शन बिना कोई मुझे धीरज देने वाला नहीं इसलिये इसी को ढूँढूँ। (सूरज की ओर देखकर) इस कठिन दुपहरी को शकुन्तला कहीं मालिनी तट की लता कुंजों में सखियों के साथ बिताती होगी अब वहीं चलूँ। (फिर कर और देखकर) इन नई लताओं में होकर प्यारी अभी गई होगी मुझे ऐसा दीखता है क्योंकि—

दोहा

जिन डारन तें मम प्रिय लुने फूल अरु पात।
सूख्यो दूध न छत भर्यो तिनको अजों लखात ॥५९॥

(पवन का लगना प्रगट करके) अहा यह स्थान कैसा सुहावना लगता है।

दोहा

लिये कमलरज गंधि अरु कन मालिनी तरंग।
आइ पवन लागति भली मदन दहे मम अंग ॥६०॥

(फिर कर और नीचे देख कर) वेतों से घिरे हुए इसी लता मंडप में प्यारी होगी क्योंकि—

नियम करके तुझे पुष्ट किया क्योंकि अब तू मुझी पर कान तक खेंचकर बान चलाता है यह तो उचित नहीं है।

(५९) जिन डालियों से प्यारी ने फूल पत्ते तोड़े हैं उनके अभी कोंद नहीं भरे और दूध भी नहीं सूखा।

(६०) यहाँ कमलों से सुगन्धित और मालिनी की तरंगों से शीतल होकर पवन आती है जिस के स्पर्श से मेरी काम की दही देह को सुख होता है।

दोहा

दीखत पंडु रेत में नए खोज या द्वार।
आगे उठि पाछे धसकि रहे नितम्बन भार ॥६१॥

भला इन वृक्षों में देखूं तौ। (फिर कर और हर्ष सहित देख कर) अहा अब मेरे नेत्र सफल हुए मनभावती वह फूलों से सजी हुई पटिया पर पौढ़ी है दोनों सखी सेवा में खड़ी हैं। अब हो सो हो इन के मते की बात सुनूँगा।

[खड़ा होकर देखता है।

(दोनों सखियों समेत शकुन्तला दीखती है)

दोनों सखी—(प्यार से पंखा झल कर)—हे सखी शकुन्तला हम कमल के पत्तों से व्यार करती हैं सो तेरे शरीर को अच्छी लगती है कि नहीं।

शकुन्तला—सखियो तुम मेरे ऊपर क्यों पंख झलती हो।

[दोनों सखी दुखी सी होकर एक दूसरे की ओर देखती हैं।

दुष्यन्त—(आप ही आप)—शकुन्तला तौ बेचैन सी दीखती है (सोच कर) क्या इसे धूप लगी है अथवा बेचैनी का कारण वही है जो मेरे मन में भासता है (अभिलाषा दिखाता हुआ) अब संदेह को छोड़ूं।

सवैय्या

लगि लेप उसीर उरोज रह्यो कर एक सढील मृनालवला।
कुछ पीड़ीत सौ तन है प्रिय कौ कमनीय तऊ जिमि चंद्रकला॥

---

(६१) इस कुंज के द्वार पर पीले रेत में नए खोज बने हैं जो नितम्बों के बोझ से एड़ी की ओर गहरे और आगे को उठे हुए हैं।

(६२) उसीर (शिवाल) का लेप छाती पर लगा है एक हाथ में कमल नाल का ढीला कंगन है और यद्यपि कुछ दुखी सी दीखती है तौ भी इसका शरीर मनोहर है ग्रीष्म की और कामदेव की ताप समान

मकरध्वज की अरु ग्रीषम को दुहु ताप कहावति तुल्यबला
परि ग्रीषम त्रास करे न कहूँ मनभावत ऐसी नई अबला ॥६२॥

प्रियम्वदा—(हौले अनुसूया से)—हे अनसूया जब शकुन्तला की दृष्टि उस राजर्षि पर पड़ी तभी से आसक्त सी हो गई है कहीं वही रोग तौ नहीं है।

अनसूया—(हौले प्रियम्वदा से)—मेरे मन में भी यही शंका होती है। भला इस्से पूछना तौ चाहिये (प्रगट) हे सखी तेरी पीड़ा बहुत बढ़ गई है इस्से तुझसे कुछ पूछना चाहती हूँ।

शकुन्तला (सेज से थोड़ी उठ कर)—क्या पूछना चाहती है?

अनसूया—सखी मदन व्यौहारों को तौ हम क्या जानें परन्तु जैसी दशा लगन लगे मनुष्यों की कहानियों में सुनी है वैसी तेरी दीखती है तू कह दे तुझे क्या रोग है क्योंकि मरम जाने बिना कोई औषधि भी नहीं कर सकता।

दुष्यंत (आप ही आप)—अनसूया को भी मेरी ही सी शंका है।

शकुन्तला—(आप ही आप)—मेरी लगन तौ बहुत कठिन है इनसे सहज क्योंकर कह सकूँगी।

प्रियम्वदा—हे शकुन्तला यह अच्छा कहती है तू अपने रोग को थोड़ा मत जान दिन दिन दुबली होती जाती है अब केवल स्वरूप ही स्वरूप रह गया है।

दुष्यंत—(आप ही आप)—प्रियम्वदा ने सत्य कहा।

आनन छीन कपोल भयो है। उर न उरोज कठोर रह्यो है॥
दुबर लंक अधिक दुबराई। झुके कध मुखपै पियराई॥

होती है परन्तु ग्रीषम की ताप से नई स्त्रियों का रूप ऐसा सुन्दर नहीं हो जाता इससे निश्चय कामदेव की सताई है।

(६२) इसके कपोल दुबले दीखते हैं उरोजों में कड़ापन नहीं रहा

करुना जोग दृगन अति प्यारी। मदन विथित दीखति यह नारी॥
मनहु माधवी लता सताई। पातसोख मारुत दुख दाई॥६३॥

शकुन्तला—सखी तुमसे न कहूँगी किससे कहूँगी तुम्हीं को दुख दूँगी।

प्रियम्वदा—प्यारी इसी से तो हम हठ करके पूछती हैं कि हितूजनों के बताने में दुःख घटता है।

दुष्यन्त—(आप ही आप)

सवैय्या

सुखदुख की साझनि साथिनियाँ मिलि पूछति हैं दुखरा तिय को।
अब देहिगी साँच बताय तिन्हें यह कारन रोग सबै जिय को॥
मुहि चाव सों बारहि बार लख्यो मुख मोरि मनो सुखरा पिय को।
अकुलात तऊ धों कहूँगी कहा मिटि धीरज मेरे गयो हिय को॥६४॥

शकुन्तला—हे सखी जब से मेरे नेत्रों के सामने तपोवन का रखवाला वह राजर्षि आया तभी से।

[इतना कह लज्जित होकर चुप रह जाती है

दोनों सखी—कहे जा।

शकुन्तला—तब से मेरा मन उसके बस होकर इस दशा को पहुँचा है।

कटि पतली तो थी ही अब और भी पतली हो गई है मुखपै पीलापन छा गया है कन्धे झुक गए हैं अब इस काम की सताई का शरीर दया के योग्य है परन्तु फिर भी मनोहर है जैसे लू की मारी चमेली का।

(६४) दुख सुख की बटाने वाली सहेली इसके शरीर की विथा का कारण पूछ रही हैं इन्हें ठीक ठीक बता देगी यद्यपि इसने फिर फिर कर मेरी ओर बड़े प्यार से देखा था तो भी मुझे धीरज नहीं होता (क्योंकि मैं डरता हूँ कि व्यथा का कारण कुछ और ही न बतावे)।

दुष्यन्त (हंर्ष से आप ही आप)—जो मैं सुना चाहता था सोई सन लिया।

दोहा

मनसिज ही दीनों इतौ मेरे मन संताप।
ताही ने करिके दया फिर दुख मेट्यो आप॥
ग्रीषम बीतें दिवस ज्यों कारे बादर लाय।
मेटत दुख प्रानीन के पहले देह तपाय ॥६५॥

शकुन्तला—जो तुम उचित समझो तौ ऐसा उपाय करो जिससे वह राजर्षि मुझ पर दया करे नहीं तौ मुझे तिलाञ्जली दो।*

दुष्यन्त—(आप ही आप)—इस बचन से तौ मेरा सब संशय मिट गया।

प्रियम्वदा—(हौले अनसूया से)—हे सखी इस की प्रेमविथा इतनी बढ़ गई है कि अब उपाय में विलम्ब न होना चाहिए और जिस पर यह मोहित है वह तौ पुरुवंश का भूषण है ही इसलिए अभिलाषा भी इसकी बड़ाई के योग्य है।

अनसूया—तू सच कहती है।

प्रियम्वदा—(प्रगट)—सखी धन्य है तेरा अनुराग क्यों न हो, समुद्र को छोड़ महानदी कहाँ जा सकती है और आम के बिना नए पत्तों वाली माधवी को कौन ले सकता है।

---

(६५) कामदेव ने मुझे सन्ताप दिया और उसी ने शकुन्तला को मेरी ओर आसक्त करके मेरा संताप मिटाया जैसे पावस का दिन पहले पशु पक्षियों को व्याकुल करता है फिर काली घटा लाकर सब को सुख देता है।

*तिलाञ्जली दो अर्थात् मरी समझो।

दुष्यंत—(आप ही आप)—जो विशाखा की तरप्याँ चन्द्र-कला की बड़ाई करें तौ क्या अचम्भा है।

अनसूया—फिर क्या उपाय है जिससे प्यारी का मनोरथ तुरंत सिद्ध हो और कोई जाने भी नहीं।

प्रियम्वदा—मनोरथ का तुरंत सिद्ध होना तौ कठिन नहीं है परन्तु उपाय गुप्त रहना कठिन है।

अनसूया—क्योंकर।

प्रियम्वदा—जब से उस राजर्षि ने इसे स्नेह की दृष्टि से देखा है क्या वह रात रात भर जागने से दुर्बल नहीं हो गया है।

दुष्यंत—(अपना शरीर देखकर)—सच है हो तौ ऐसा ही गया हूँ क्योंकि—

दोहा

निशि निशि आँसू ताप के परत भुजा पै आय।
मानिक या भुजबन्द के फीके भए बनाय॥
बार बार ऊंचो करूँ खिसलि खिसलि यह जात।
मुरवी हू की गूँथि पै नैक नहीं ठैरात॥६६॥

प्रियम्वदा—(सोच कर)—हे सखी अनसूया मेरे विचार में यह आता है कि इससे एक प्रीति पत्र लिखाऊँ और फूलों में रखकर देवता के प्रसादमिस राजा के पास पहुँचा दूँ।

अनसूया—सखी यह उपाय तो बहुत उत्तम है शकुन्तला क्या कहती है।

---

(६६) रात में जब सिर के नीचे बाँह रखकर सोता हूँ सन्ताप के तत्ते आँसू भुजबन्द पर पड़ते हैं जिससे भुजबन्द के रत्न फीके हो गये हैं और मैं दुबला इतना हो गया हूँ कि इस आभूषण को बार बार ऊँचा करता हूँ

शकुन्तला—इसका परिणाम मुझे सोच लेने दो।

प्रियम्वदा—सखी तू सोच कर अपने ऊपर लगता हुआ कोई ललित सा छन्द बना दे।

शकुन्तला—छंद तो बना दूंगी परन्तु मेरा हृदय काँपता है कि कहीं वह पत्र को लौटा कर मेरा अपमान न कर दे।

दुष्यन्त (प्रसन्न होकर आप ही आप)—

दोहा

जासों तू संका करति मतिक अनादर देइ।
अभिलाषी तो दरस को ठाढी लखि किन लेइ॥
कमला मिले कि ना मिले ताहि चहत जो कोइ।
पै जाकों कमला चहै सो दुरलभ क्यों होइ॥६७॥

दोनों सखी—हे अपने गुणों की निन्दक भला बता तो ऐसा मूर्ख कौन होगा जो शरीर का ताप मिटाने वाली शरद चांदनी को रोकने के लिए सिर पर कपड़ा ताने।

शकुन्तला—(मुस्काकर)—तो मैं तुम्हारा कहना करती हूँ।

[सोचती है

दुष्यन्त (आप ही आप)—प्यारी को लोचन भर देखने का यह अवसर अच्छा है।

दोहा

छन्द रचति सोचति वरन भृकुटी एक चढ़ाय।
पुलक कपोलन तें रही मो में प्रीति जनाय॥६८॥

---

(६७) जिसकी ओर से तुझे डर है कि कहीं चिट्ठी फेर कर अनादर न कर दे सो तेरे मिलने का अभिलाषी यह खड़ा है। लक्ष्मी चाहे मांगने से न भी मिले परन्तु यह क्यों कर हो सकता है कि जिसे लक्ष्मी चाहे वह न मिले।

(६८) छन्द बनाने में एक भौंह उठाए हुए यह कैसी सुन्दर

शकुन्तला—सखी गीत तो मैंने बना लिया परन्तु लिखने को सामग्री नहीं है।

प्रियम्वदा—इस शुकोदर समान कोमल कमल के पत्ते पर नखों से लिख दे।

शकुन्तला (पत्ते पर गीत लिख कर)—सखियों सुनो इस छन्द में अर्थ बना कि न बना।

दोनों सखी—अच्छा बाँच।

शकुन्तला—(बाँचती है)

दोहा

तो मन की जानति नहीं अहो मीत बेपीर।
पै मो मन कों करत नित मनमथ अधिक अधीर॥

सोरठा

लाग्यो तोसों नेह रैन दिना कल ना परे।
काम तपावत देह अभिलाषा तुहि मिलन की॥६६॥

दुष्यन्त (झटपट आगे बढ़ कर)

दोहा

केवल तोहि तपावही मदन अहो सुकुमारि॥
भस्म करत पै मो हियो तू चित देखि विचारि॥

लगती है और इसके गदगद कपोलों से मेरी ओर कैसी प्रीति झलक रही है।

(६६) हे मीत मैं तेरे मन को तो जानती नहीं हूँ परन्तु मेरे मन को कामदेव नित्त बेचैन करता है और मेरे शरीर को जो तुझ से मिलने का अभिलाषी तपाता है।

(७०) हे सुन्दरी तुझे तो कामदेव सताता ही है पर मुझे भस्म ही किये डालता है। जैसे दिन कमोदिनी की शोभा को इतना नहीं बिगाड़ता जितना कि चन्द्रमा की शोभा को।

सोरठा

भानु मंद करदेत केवल गंधि कमोदिनिहि ।
पै शशिमंडल स्वेत होत प्रात के दरस तें ॥७०॥

[दुष्यन्त का प्रवेश]

दोनों सखी (देखकर हर्ष सहित उठती हैं)—बड़े आनन्द की बात है कि मनोरथ तुरंत सिद्ध हो गया।

(शकुन्तला आदर देने को उठती है)

दुष्यन्त—रहो रहो मेरे लिए क्यों परिश्रम करती हो।

दोहा

सुमनसेज तें लगि रहे सुंदरि तेरे गात।
सुरभितहू मिडि के भए मृदुलाल जलजात ॥
खेदित से दीखत खरे कठिन ताप के रोग।
आदर देवे काज ये नाहिं उठन के जोग ॥७१॥

अनसूया—अजी इस चट्टान पै विराजिये जहाँ शकुन्तला बैठी है। [राजा बैठता है शकुन्तला लजाती है

प्रियम्वदा—तुम दोनों को एक दूसरे में अनुराग तो प्रत्यक्ष है परंतु फिर भी सखी का प्यार मुझ से कुछ कहलाया चाहता है।

दुष्यंत—कहना है सो कहो क्योंकि जो बात कहने को मन में आई हो और कही न जाय वह पीछे दुख देती है।

प्रियम्वदा—प्रजा में जो किसी को कुछ विपत्ति हो उस को राजा दूर करे ऐसा तुम्हारा धर्म्म कहा है।

दुष्यंत—सत्य है इससे बड़ा कोई धर्म्म राजा के लिए नहीं है।

---

(७७) तेरा ताप का सताया शरीर पुष्प शय्या से लगा हुआ और कमल का कोमल पङ्खुरियों से सुगंधित इतना कष्ट सहने योग्य नहीं है।

प्रियम्वदा—हमारी इस प्यारी सखी को कंदर्प बली ने तुम्हारी लगन में इस दशा को पहुँचा दिया अब तुम्हीं इस योग्य हो कि कृपा करके इस के प्राण रक्खो।

दुष्यंत—हे सुंदरी प्रार्थना तौ दोनों ओर समान है परन्तु अनुग्रह सब भाँति तुझी पर है।*

शकुन्तला—(प्रियम्वदा की ओर देख कर)—राजर्षि को क्यों यहाँ बिलमाती हो इनका मन रनवास में धरा होगा।

दुष्यन्त—सुन्दरी।

दोहा

तेरे ही बस मो हियो अरु काहू बस नाहिं।
बसति तुहीं मदलोचनी मेरे हिय के माहिं॥
जो यातें औरहि कछू शंका उपजी तोहि।
तौ मनमथ बानन हन्यो फेरि हनति तू मोहि॥७२॥

अनसूया (हँस कर)—हे सज्जन हम सुनती हैं कि राजा बहुत रानियों के प्यारे होते हैं परंतु तुम हमारी सखी का ऐसा निरबाह करना जिससे इसके बांधवों को क्लेश न हो।

दुष्यन्त—हे सुन्दरी अधिक क्या कहूँ।

दोहा

होंय बड़े रनवास मम द्वै कुलभूषन नारि।
सागर रसना बसुमती अरु यह सखी तुम्हारि॥७३॥

---

*प्रार्थना दोनों ओर समान है। अर्थात् जैसे तू इसके प्राण रखने को मुझ से कहती है मेरे प्राण रखने को इससे भी कह।

(७२) मेरा मन तेरे ही बस है और किसी के नहीं और जो तू इसमें कुछ शङ्का करती है तो मानो कामदेव के बानों से मुझे मारे हुए को फिर मारती है।

(७३) एक रानी मेरी पृथ्वी है दूसरी शकुन्तला होगी इनसे ऊपर कोई न होगी।

दोनों सखी—तौ यह हमारी चिंता मिटी।

प्रियम्वदा—(अनसूया की ओर देख कर)—हे अनसूया देख इधर दीठि किये हुए हरिणों का बच्चा कैसा अपनी मा को ढूँढ़ता फिरता है चलो उसे मिला दें।

[दोनों चलती हैं

शकुन्तला—सखियो मैं अकेली रही जाती हूँ तुम में से एक तौ यहाँ आओ।

दोनों सखी (मुसका कर)—अकेली क्यों है जो देसदुनी का रखवाला है सो तौ तेरे पास बैठा है।

[दोनों जाती हैं

शकुन्तला—क्या दोनों ही गईं,

दुष्यंत—प्यारी चिंता मत कर क्या मैं तेरा टहलुआ पास नहीं हूं।

शिखरनी

कहै प्यारी तोपैं कमल बिजना शीतल झलूँ।
लगै सीरी सीरी पवन तन को आलस मिटै॥
कहै लैके अंकें चरन प्रिय के जावक रचे।
मलूँ नैमें जैसे सुखद करभोरू तुहि जचे॥७४॥

[उठ कर चलने को होती है

दुष्यन्त—हे सुन्दरी अभी दुपहरी कड़ी है और तेरे शरीर की यह दशा है।

(७४) हे हाथी की सूँड समान जाँघों वाली तू कहे तौ कमल का पत्ता लेकर ब्यार झलूँ जिससे पसीना सूख कर शरीर ठंढा हो कहे तेरे महावर लगे हुए पैरों को गोद में लेकर हौले मलूँ।

दोहा

कुसुम सेज तजि धूप में लैके कोमल गात ।
कहाँ जायगी उर धरे जलजातन के पात ॥७५॥

[हाथ पकड़ कर बिठाता है

शकुन्तला—हे पुरुवंशी नीति का पालन करो मदन की सताई हुई भी मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ।

दुष्यन्त—हे कामिनी. गुरुजनों का कुछ भय मत कर क्योंकि कन्व धर्म्म को जानते हैं यह बातें सुन कर तुम्हे दोष न देंगे।

सोरठा

बहुत राजऋषि धीय गईं ब्याहि गंधर्व विधि ।
हरषि मातु पितु हीय तिनहू कों आदर दियो ॥७६॥

शकुन्तला—अंचल छोड़ दो मैं अपनी सखियों से फिर कुछ पूछ आऊँ।

दुष्यंत—अच्छा छोड़ूँगा।

शकुन्तला—कब।

दुष्यन्त—

दोहा

ज्यों कोमल सद फूलतें मधुकर अवसर पाय ।
मन्द मन्द मधु लेत है मन को तपति बुझाय ॥

---

(७५) इस दुपहरी में सेज छोड़ कर तू कमल के पत्तों से छाती ढके अपने कोमल शरीर को कहाँ ले जायगी।

(७६) बहुत राजऋषियों की बेटी गन्धर्व रीति से ब्याही हुई सुनी हैं और यह भी सुना है कि उनके मा-बाप ने उनको बुरा नहीं कहा।

(७७) जैसे समय पाकर भौंरा सद फूल से हौले-हौले रस लेकर अपनी प्यास बुझाता है ऐसे ही हे सुख देने वाली जब मैं तेरे अछूते होंठ के रस से तृप्त हो लूँगा तब तुझे छोड़ूंगा।

तैसे ही कलिहू इक मैं प्यारी मुसकान ।
तेरे अधर अछूत की सहज मधुर रस पान ॥२४॥

[शकुन्तला का हाथ उठाता है और वह बरजती है

(नेपथ्य में)—हे चकवी रात आ गई अब तू अपने नाथ से न्यारी हो।

शकुन्तला (कान लगाकर घबड़ा कर) हे पौरव निश्चय मेरे शरीर का वृत्तान्त पूछने भगवती गौतमी इधर ही आती है तुम वृक्ष की आड़ में हो जाओ।

दुष्यन्त—अच्छा यही करूंगा।

[वृक्ष की ओट में छुपता है

(हाथ में कमंडल लिये गौतमी दोनों सखियों सहित आती है)

दोनों सखी—भगवती इधर आओ इधर आओ।

गौतमी (शकुन्तला के निकट जाकर)—बेटी अभी तेरे शरीर का ताप कुछ घटा कि नहीं।

शकुन्तला—हाँ कुछ घटा है।

गौतमी—इस कुशा के जल से तेरा शरीर निरोग हो जायगा। (सिर पै पानी के छींटे देती है) हे बेटी अब सन्ध्या हुई चल कुटी को चलें।

[जाती है

शकुन्तला (आप ही आप)—हे मन जब सुख लेने का अवसर सन्मुख आया तब तो तू अभागा कायर हो गया अब प्यारे के विरह सन्ताप में तेरी क्या गति होगी (थोड़ी दूर चलकर खड़ी होती है। (प्रगट) हे दुःख हरनेवाली लता अब मैं तुझसे न्यारी होती हूँ परन्तु आशा रखती हूँ कि कभी फिर भी तुझे देखूँगी।

[दुखी हो सब के साथ जाती है

दुष्यंत (पहले स्थान पर जाकर और गहरी श्वास लेकर)—अहा मनोरथ सिद्ध होने में अनेक विघ्न पड़ते हैं।

दोहा

वार बार अंगुरीन तें लीने होठ दुराय।
नाहिं नाहिं मीठो वचन बोली मुख मुरकाय ॥
ता छिन मृग नयनी वदन मैं कछु लियो उठाय।
पै अधरामृत पान कों समरथ भयो न हाय ॥७८॥

अब कहाँ जाऊँ इसी लतामंडल में जिसे प्यारी क्रीड़ा करके छोड़ गई है घड़ी एक आसन जमाऊँगा।

[चारों ओर देख कर

चौपाई

यह प्यारी की है सिलशय्या। गातन अंकित फूलन मय्या।
प्रेमपत्र यह है कुम्हिलाता। नखतें लिख्यो कमल के पाता॥
यह मृनालकंकन है सोई। गिर्‌यो प्रिया के कर तें जोई।
इनहिं लखत मैं सकत न त्यागी। सूनिहु वेत कुंज दुरभागी ॥७९॥

(नेपथ्य में)—हे राजा।

---

(७८) अंगुलियों से होठ छुपा कर वार वार नहीं नहीं कहती हुई का मुख मैंने कुछ उठा तो लिया परन्तु होठ का रस लेने को दाव न पड़ा।

(७९) यही प्यारी की फूल बिछी हुई शिला की सेज है यह वह पत्र पड़ा है जो उसने कमल के पत्ते पर नह से लिखा था वह उसके हाथ से गिरा हुआ कमलनाल का कंगना है इन सब को देख कर यह अभागी सूनी कुंज भी मुझसे छोड़ी नहीं जाती।

दोहा

संध्या पूजन होत ही राक्षसन की छांह।
परति आय चहुँ ओर तें प्रज्वलित वेदिन मांह।
सांझ समय के मेघ सम असित वरन अरु पीत।
देति त्रास तपसीन कों करति महाभयभीत ॥८०॥

दुष्यंत—हे तपस्वियो घबड़ाओ मत मैं आया।

[जाता है

तीसरा अंक समाप्त हुआ।

---

(८०) साँझ की पूजा का आरम्भ होते ही जलती हुई वेदियों पर राक्षसों की काली पीली छाया पड़ने लगी जैसे सन्ध्या से बादलों की, और यह छाया तपस्वियों को भयावनी लगती है।

चौथे अङ्क का विष्कम्भ

स्थान—तपोवन

(दोनों सखी फूल बीनती हुई आती हैं)

अनसूया—हे प्रियम्वदा शकुंतला का गंधर्व ब्याह हुआ और पति भी उसी के समान मिला इससे तौ मेरे मन को आनन्द हुआ परंतु फिर भी चिंता न मिटी।

प्रियम्वदा—क्यों ?

अनसूया—इसलिए कि आज वह राजर्षि तपस्वियों का यज्ञ पूरा कराकर अपने नगर को विदा हुआ है रनवास में पहुँच कर जाने यहाँ के वृत्तांत की सुध रक्खेगा कि नहीं।

प्रियम्वदा—इस की कुछ चिंता मत कर ऐसे विशेष रूप के लोग स्वभाव के खोटे नहीं होते अब चिंता है तौ यह है कि न जाने पिता कन्व इस वृत्तांत को सुनकर क्या कहेंगे।

अनसूया—मेरे मन में तौ यह भासती है कि वे इस वृत्तांत से प्रसन्न होंगे।

प्रियम्वदा—क्यों ?

अनसूया—इसलिये कि बड़ों का मुख्य संकल्प यही होता है कि कन्या गुणवान को दी जाय और जो दैव आप ही ऐसा वर मिला दे तो उनको समझना चाहिए कि सहज ही कृतार्थ हुए।

प्रियम्वदा—सत्य है। (फूलों की टोकरी देख कर) हे सखी जितने फूल पूजा को चाहिए उतने तौ हम बीन चुकीं।

अनसूया—शकुन्तला से सुहागदेवी की पूजा भी तो करानी है।

प्रियम्वदा—अच्छा। [दोनों फूल बीनती हैं

(नेपथ्य में)—यह मैं हूं मैं।

अनसूया (कान लगा कर)—हे सखी यह तो किसी अतिथि का-सा बोल है।

प्रियम्वदा—क्या शकुंतला कुटी पर नहीं है (आप ही आप) है तो परन्तु आज उसका चित्त ठिकाने नहीं है।

अनसूया—चलो इतने ही फूल बहुत हैं।

[चलती हैं

(नेपथ्य में)—हे अतिथि का निरादर करने वाली।

चौपाई

तपोधनी मैं जात कहायो। तैं नहिं जान्यो सन्मुख आयो॥
जाके ध्यान एकटक लागो। सुधि बुधि तैं सबही को त्यागो॥
सो जन युवति भूल तुहि जाई। आवे सुरति न कोटि उपाई॥
जैसे मदमातो नर कोई। प्रथम बात कहि भूल्यो होई॥८१॥

प्रियम्वदा—हाय हाय बुरा हुआ किसी तपस्वी का अपराध बेसुधी में शकुन्तला से बन गया (आगे देख कर) यह तो कोई ऐसा वैसा नहीं महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि हैं जो शाप देकर रिस का भरा डिगमिगाते पैरों वेग वेग जाता है। भस्म कर देने की सामर्थ दो ही में है एक अग्नि में दूसरे इस ब्राह्मण में।

---

(८१) मैं तप का धनी कहलाता हूँ तैंने मुझे सामने आता हुआ न जाना न मेरा सम्मान किया इसलिये मैं शाप देता हूँ कि जिस के वियोग में तू बेसुध ध्यान लगाये बैठी है वह तुझे भूल जायगा और बहुत याद दिलाने से भी उसे सुध न आवेगी जैसे उन्मत्त को नहीं आती।

अनसूया—हे प्रियम्वदा तू जा पैरों पड़ कर जैसे बने इसे मना ला तब तक मैं अर्घ जल संजोती हूँ।

प्रियम्वदा—अच्छा ।

[जाती है

अनसूया (थोड़ी दूर चल कर गिर पड़ती है)—हाय उतावली होकर मैंने फूलों की टोकरी हाथ से गिराई।

[फूल बिनने लगती है

(प्रियम्वदा आती है)

प्रियम्वदा—हे सखी इस महर्षि का स्वभाव बड़ा टेढ़ा है उसे कौन सीधा कर सकता परन्तु मैंने कुछ कर लिया।

अनसूया—इसका थोड़ा मान जाना भी बहुत है तू यह बतला कि कैसे मनाया।

प्रियम्वदा—जब लौटने को नट गया तब मैंने बिनती की कि हे महापुरुष इस कन्या का पहला ही अपराध है और यह तप के प्रभाव को जानती न थी ऐसा विचार कर इसे क्षमा करो।

अनसूया—फिर क्या हुआ।

प्रियम्वदा—तब बोला कि मेरा बचन झूठा नहीं होता परंतु सुध दिलाने वाली मुंदरी के देखने पर शाप मिट जायगा। यह कहकर अंतर्ध्यान हो गया।

अनसूया—तो अभी कुछ आशा है क्योंकि जब वह राजर्षि चलने को हुआ अपनी मुंदरी जिस में उस का नाम खुदा था शकुन्तला की अंगुली में सुध के लिये पहना गया वही मुंदरी हमारी सखी को इस शाप का सहज उपाय होगी।

प्रियम्वदा—सखी चलो अब देवकारज से निपट आवे। (इधर उधर फिर कर और देख कर) हे अनसूया देख बाएँ कर पर कपोल धरे प्यारी सखी कैसी चित्र लिखी सी बन रही है पति वियोग में इसे तो सामने आए की क्या अपनी भी सुध नहीं है।

अनसूया—हे प्रियम्वदा यह शाप की बात हम ही तुम जानें शकुन्तला को मत सुनाओ क्योंकि उसका स्वभाव कोमल बहुत है।

प्रियम्वदा—ऐसा कौन होगा जो नवमल्लिका की लहलही लता पर तत्ता पानी छिड़के।

[दोनों जाती हैं

अङ्क ४

स्थान आश्रम का समीप समीप

(कन्व का एक शिष्य सोते से उठकर आता है।)

शिष्य—महात्मा कन्व अभी परदेश से आये हैं और मुझे आज्ञा दी है कि देख आ कि रात कितनी रही है इसलिए मैं बाहर जाता हूँ। (इधर उधर फिर आकाश की ओर देखता हुआ।) अहा ! यह तो सवेरा हो गया।

चौपाई

एक ओर प्रभु औषधिराई। अस्ताचल शिखरन कों जाई।
दूजी ओर पदुमिनी नायक। निकस्यो अरुण सहित तमघायक॥
अस्त उदय सिखरावत इनकौ। एक सङ्ग द्वै तेजमइन कौ।
धीरज धरम तजें नर नाहीं। निज निज संपति विपतिन माही॥८२॥

चौपाई

अस्ताचल पहुँच्यो ससि जाई। दई कुमुदनी छवि विसराई॥
दृगन देति अब आनन्द नाहीं। आय रही छवि सुमिरन माही॥

---

(८२) चन्द्रमा और सूरज का भी उदय और अस्त होता है इससे मनुष्य को चाहिये कि अपनी सम्पत्ति और विपत्ति को अचरज न जाने और अधीर न हो।

(८३) चन्द्रमा के अस्त होने पर कमोदनी की शोभा केवल ध्यान में रह गई है अर्थात् देखने में नहीं है परन्तु सुध में है कि ऐसी थी जिन नई स्त्रियों के पति परदेश हैं उनको वियोग का दुख सहना बहुत कठिन होता है।

जिन तिरियन के प्रीतम प्यारे। देस छोड़ि परदेस सिधारे॥
तिन के दुख नहिं जात कहेहू। अबलन पै क्यों जात सहेऊ॥८३॥

(अनसूया पट को झटके से उठा कर आती है)

अनसूया—(आप ही आप) यद्यपि मैं संसार की बातों में अजान हूँ। तौ भी इतना मैंने जान लिया कि उस राजा ने शकुन्तला के साथ अनर्थ किया !

शिष्य—अब होम का समय हुआ गुरू जी से चल कर कहना चाहिये। [बाहर जाता है

अनसूया—मैं उठी भी तौ क्या करूँगी हाथ पैर तौ कहना ही नहीं करते अब निर्दई कामदेव का मनोरथ पूरा हुआ जिसने हमारी भोली सखी को एक मिथ्यावादी के बस में डाल इस दशा को पहुँचाया है अथवा यह भूल दुर्वासा के शाप का फल है नहीं तौ क्योंकर हो सकता कि वह राजर्षि ऐसे बचन दे कर अब तक सन्देशे का पत्र भी न भेजता। अब सुध दिलाने को अँगूठी उसके पास भेजनी पड़ी परन्तु इन दुखिया तपस्वियों म किस से कहूँ कि अँगूठी ले जा जो मैं यह भी जानती कि शकुन्तला का दोष है तौ भी पिता कन्व से जो अभी तीर्थ करके आये हैं न कह सकती कि शकुन्तला का ब्याह राजा दुष्यन्त से हो गया और उसे गर्भ भी है अब क्या करना चाहिये।

(प्रियम्वदा हँसती हुई आती है)

प्रियम्वदा—सखी वेग चल शकुन्तला की बिदा का उपचार करें।

अनसूया—तू क्या सच कहती है ?

प्रियम्वदा—सुन अभी मैं शकुन्तला से पूछने गई थी कि रात में चैन से सोई कि नहीं।

अनसूया—तब।

प्रियम्वदा—वह तौ लाज की मारी सिर झुकाये खड़ी थी इतने में पिता कन्व आए और इसे छाती से लगा कर यह शुभ वचन बोले कि हे पुत्री बड़े मंगल की बात है कि आज जब ब्राह्मण ने आहुति दी तब यद्यपि यज्ञ के धुएँ से उसकी दृष्टि धुँधली हो रही थी आहुति अग्नि ही में पड़ी। हे बेटी जैसे योग्य शिष्य को विद्या देने से मन को खेद नहीं होता ऐसे आज मैं तुझे बिना खेद तेरे भरता के पास ऋषियों के साथ भेज दूँगा।

अनसूया—हे सखी जो बातें मुनि के पीछे हुई सो उनसे किसने कह दीं।

प्रियम्वदा—जब मुनि यज्ञ स्थान के निकट पहुँचे तब आकाश वाणी छंद में कह गई।

अनसूया (चकित होकर)—क्या कह गई ?

प्रियम्वदा—सखी सुन आकाश वाणी ने यह कहा।

दोहा

समी गरभ में अनल ज्यों त्यों तेरी धिय संत।
धारति तेज दियो जु नृप प्रजा हेत दुष्यंत ॥८४॥

अनसूया—(प्रियम्वदा को भेंट कर) हे सखी यह सुन कर तौ मुझे बड़ा आनंद हुआ बड़ा सुख हुआ परन्तु जब सोचती हूँ कि शकुन्तला आज ही जायगी तौ सुख और दुख समान हो जाते हैं;

प्रियम्वदा—जब सुखी रहेगी इससे हम को भी कुछ शोक न करना चाहिये।

---

(८४) जैसे शमी (छोंकर) की लकड़ी के भीतर अग्नि रहती है मुनि तेरी लड़की के गर्भ में वह तेज है जो राजा दुष्यंत ने उसे प्रजा का रक्षक उत्पन्न करने को दिया है।

अनसूया—मैंने इसी दिन को उस नारियल में जो आम के पेड़ पर लटकता है नित नई नागकेसर की माला रक्खी थी तू इसे उतार ले तब तक मैं मृगरोचन और तीर्थ की मिट्टी और दूब मङ्गल उपचार की सामग्री ले आऊँ।

प्रियम्वदा—बहुत अच्छा।

[अनसूया जाती है और प्रियम्वदा माला उतारती है

(नेपथ्य में)—हे गौतमी, शारंगरव और शारद्वत शिष्यों से कह दो कि शकुन्तला के पहुँचाने को जाना होगा।

प्रियम्वदा (कान लगा कर)—अनसूया विलम्ब मत कर हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि बुलाए जाते हैं।

(अनसूया हाथ में सामग्री लिये आती है।)

अनसूया—आओ सखी हम भी चलें।

[दोनों इधर उधर फिरती हैं

प्रियम्वदा (देखकर)—वह देख शकुन्तला सूरज निकलते ही शिर स्नान करके बैठी है और बहुत सी तपस्विनी हाथ में तंदुल लिये आशीष दे रही हैं चलो हम भी वहीं चलें।

[जाती है

(उधर कही हुई भाँति शकुन्तला बैठी दीखती है)।

एक तपस्विनी (शकुन्तला की ओर देख कर) हे बेटी तू पति से मान पाकर महारानी हो।

दूसरी—तू सूरवीर की माता हो।

तीसरी—तू पति की प्यारी हो।

[आशीर्वाद देकर सब जाती हैं गौतमी रहती है

दोनों सखी (शकुन्तला के निकट जाकर)—तेरा स्नान मङ्गलकारी हो।

शकुन्तला—(आदर से)—सखियों भली आई यहाँ बैठो।

दोनों सखी (मङ्गल पात्र हाथ में लिये हुए बैठती हैं)—सखी तू चलने को उपस्थित हो। आ पहले हम नेगचार का उबटन कर दें।

शकुन्तला—हे प्यारियों तुम्हारे हाथ से फिर सिगार मिलना मुझे दुर्लभ हो जायगा इसलिए जो कुछ तुम आज मेरे लिए करोगी मैं बहुत करके मानूँगी। [आँसू गिराती है

दोनों सखी—सखी ऐसे मङ्गल समय रोना उचित नहीं है।

[आँसू पोंछ कर वस्त्र पहनाती है

प्रियम्वदा—हे सखी तेरे इस सुंदर अङ्ग को अच्छे अच्छे गहने कपड़े चाहिये थे ये आश्रम के फूल पत्ते तो अनहोते को हैं अच्छे नहीं लगते।

(दो ऋषिकुमार वस्त्राभूषण लिये आते हैं)

दोनों ऋषिकुमार—भगवती को ये वस्त्राभूषण पहनाओ।

[देख कर सब चकित होती है

गौतमी—हे पुत्र नारद ? ये कहाँ से आये ?

पहला ऋषिकुमार—पिता कन्व के प्रभाव से।

गौतमी—क्या मन में विचारते ही प्राप्त हो गये।

दूसरा ऋषिकुमार—नहीं सुनों जब महात्मा कश्यप की आज्ञा हम को हुई कि शकुन्तला के निमित्त लता वृक्षों से फूल ले आओ तब तुरंत—

चौपाई

काहू तरवर दीन्ह उतारी। मङ्गलीक ससि सम सितसारी॥
काहू दियो लाख रस सोई। जासों तुरत महावर होई॥

---

(८५) किसी वृक्ष ने श्वेत मङ्गलीक साड़ी दी किसी ने महावर को लाख दी किसी ने बन देवियों के हाथों बहुत प्रकार के गहने दिये और बन देवियों के हाथ पहुँचे तक ऐसे दीखे मानों वहीं ...

औरन बहुविधि भूषन भीने। बन देविन के हाथन दीने ॥
ते निकसे पहुँचे लों हाथा। होड़ करत नवसाखन साथा ॥८५॥

प्रियम्वदा (शकुन्तला को देख कर)—बनदेवियों से वस्त्राभरण मिलना यह सगुन तुझे सासरे में राजलक्ष्मी का दाता होगा।

[शकुन्तला लजाती है

पहला ऋषिकुमार—हे गौतम! आओ आओ गुरुजी स्नान करके आ गए चलो उनसे बनदेवियों के सत्कार का वृत्तांत कह दें।

दूसरा—अच्छा।

[दोनों जाते हैं

दोनों सखी—हे सखी हम आभूषणों को क्या जाने परंतु चित्र विद्या के बल से तेरे अंगों में पहना देंगी।

शकुन्तला—मैं तुम्हारी चतुराई जानती हूँ।

[दोनों शृंगार करती हैं

कन्व—

(कन्व स्नान किये हुए आते हैं)

दोहा

आज शकुन्तला जायगी मन मेरो अकुलात।
रुकि आँसू गद्गद् गिरा आँखिन कछु न लखात ॥
मोसे बनवासीन जो इतौ सतावत मोह।
तौ गेही कैसे सहें दुहिता प्रथम बिछोह ॥८६॥

[इधर उधर टहलते हैं

---

(८६) आज शकुन्तला जायगी इससे मेरा मन बहुत उदास है गले से बात नहीं निकलती और आँखों से धुंधला दीखता है जब मुझ सरीखे तपस्वियों को भी बेटी का पहला वियोग इतना दुःख देता है तो गिरिस्तियों की क्या दशा होती होगी।

दोनों सखी—हे शकुन्तला तेरा सिंगार हो चुका अब कपड़े का जोड़ा पहन ले।

[शकुन्तला उठकर साड़ी पहनती है

गौतमी—हे पुत्री आनन्द के आँसू भरे नेत्रों से तुझे देखने गुरूजी आते हैं तू इन्हें आदर से ले।

शकुन्तला (उठकर लज्जा से)—पिता मैं नमस्कार करती हूँ।

कन्व—हे बेटी—

दोहा

तू पति की आदरवती हूजो ता घर जाय।
जैसे सरमिष्ठा भई नृप ययाति वर पाय॥

सोरठा

छत्रपती पुर नाम जैसो सुत वाने जन्यो।
चक्रवती अभिराम तैसो ही जनियो तुहू॥८७॥

गौतमी—हे महात्मा यह तो आशीर्वाद क्या है वरदान है।

कन्व—आ बेटी तुरंत आहुति दी हुई अग्नियों की प्रदक्षिणा कर ले [सब प्रदक्षिणा करती हैं

शिखरनी

चहूँघा वेदी के विधिवत रची हैं अगिनि ये।
बिछीं दर्भा नेरे अरु प्रजुल सोहें समिद ले॥

---

(८७) जैसे राजा ययाति की रानी होकर शरमिष्ठा ने आदर पाया तैसेतू भी पति से आदर पावेगी जैसे सरमिष्टा ने छत्रपती बेटा पुरु जना ऐसे तू भी चक्रवर्ती बेटा जनेगी।

(८८) यही यज्ञ की अग्नियाँ जो वेदीके चारों ओर रक्खी हैं और जिन के आस पास दाभ बिछी है यही अग्नियाँ जो समिद सेप्रज्वलित हैं और जो हव्य की सुगन्धि से पापों का नाश करती हैं तुझे पवित्र करें।

नसावें प्रानी के अघ हविरगंधी धुवन तें।
यही ज्वाला तेरे दुरित सब बेटी परिहरें ॥८८॥

अब पुत्री तू शुभ घड़ी में विदा हो (चारों ओर देख कर संग जाने वाले मिश्र कहाँ हैं।

(शारङ्गरव और शारद्वत आते हैं)

शिष्य—मुनि जी हम ये हैं।

कन्व...अपनी बहन को गैल बताओ।

शारङ्गरव...आओ भगवती इधर आओ। [सब चलते ह

कन्व...हे तपोवन के सहवासी वृत्तो...

दोहा

पीछे पीवति नीर जो पहले तुम कों प्याय।
फूल पात तोरति नहीं गहनेहू के चाय॥
जब तुम फूलन के दिवस आवत हैं सुखदान।
फूली अंग समाति नहीं उत्सव करति महान॥
सो यह जाति शकुन्तला आज पिया के गेह।
आज्ञा देहु पयान की तुम सब सहित सनेह॥८९॥

[कोयल का बोल जता कर

यह देखो

दोहा

आज्ञा देत पयान की, ये तरवर वनराय।
वनवासिन के वन्धुजन, कोयल शब्द सुनाय॥९०॥

---

(८९) हे वृत्तों जो शकुन्तला तुम्हें सींचे विना जल नहीं पीती थी जो गहना वनाने को भी तुम्हारे फूल पत्ते नहीं तोड़ती थी जो तुम्हारे फूलने के दिनों बड़ा उत्सव मानती थी सो आज ससुराल जाती है तुम सब इसे प्रीति सहित विदा करो।

(९०) वनवासियों के प्यारे ये वृत्त शकुन्तला को कोयल के मुख से ससुराल जाने की आज्ञा देते हैं।

(नेपथ्य में)

चौपाई

पंथ होय याकों सुखकारी। पवन मंद अरु अभिमतचारी॥
ठौर ठौर सरिता सर आवें। हरित कमलिनी छाय सुहावें॥
तरवर शीतल छाँह घनेरे। मेटन हार ताप रवि केरे॥
मृदुल भूमि पग पग सुखदाई। मनहु कमल रज दीन्ह बिछाई॥६१॥

(सब कान लगाकर अचम्भे से सुनते हैं)

गौतमी—हे पुत्री! तेरी हितकारिन तपोवन की देवियाँ तुझे आशीर्वाद देती हैं तू भी इनको प्रणाम कर।

शकुन्तला (नमस्कार करके प्रियम्वदा से हौले हौले)—हे प्रियम्वदा! आर्यपुत्र से फिर मिलने का तौ मुझे बड़ा चाव है परन्तु आश्रम को छोड़ते हुए दुःख के मारे पाँव आगे नहीं पड़ते।

प्रियम्वदा—अकेली तुझी को दुःख नहीं है ज्यों ज्यों तेरे वियोग का समय निकट आता है तपोवन भी उदास सा दीखता है।

दोहा

लेत न मुख में घास मृग मोर तजत नृत जात।
आँसू जिमि डारत लता पीरे पीरे पात॥ ६२॥

शकुंतला—(सुध करती हुई सी) पिता मैं इस माधवी लता से भी मिल लूँ इस में मेरा बहन का सा स्नेह है।

---

(६१) इनका मार्ग सुखकारी हो ठौर ठौर हरी कमलिनियों से छाये हुए ताल और नदी आवें घाम मेटने वाले घने घने वृक्ष मिलें और मार्ग ऐसा कोमल हो मानो इस में कमल के फूलों की रज बिछी है।

(६२) हरिन चरना और मोर नाचना छोड़ते जाते हैं और लता पीले पीले पत्ते गिराती है मानों आँसू डालती है।

कन्व—बेटी मैं भी जानती हूँ तेरा इसमें सहोदर का सा प्यार है माधवी लता यह है दाहिनी ओर।

शकुंतला (लता के निकट जाकर)—हे बनज्योतसना यद्यपि तू आम से लिपट रही है तौ भी इन शाखारूपी बाहों से मुझे मिल ले क्योंकि अब मैं तुझ से दूर जा पड़ूंगी।

कन्व—

दोहा।

जैसो पति तेरे लिए मैं संकल्प्यो आप।
तैसो तैं पायो सुता अपने पुन्न-प्रताप॥
मिली भली नवमल्लिका यह आम संग आय।
आज भयो तुम दुहुन तें मैं निश्चिन्त उपाय॥६३॥

हे बेटी विलम्ब मत कर अब विदा हो।

शकुंतला (दोनों सखियों से)—हे सखियों इसे मैं तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ।

दोनों सखी (आँसू गिराती है)—हमें किसके हाथ सौंपती है।

कन्व—हे अनसूया अब रोना त्यागो तुम्हें तौं चाहिये कि शकुन्तला को धीरज बंधाओ।

[सब चलते हैं

शकुन्तला—हे पिता जब यह कुटी के निकट चरने वाली गयाभन हरिनी क्षेम कुशल से जने तुम किसी के हाथों यह मंगल समाचार मुझे कहला भेजना भूल मत जाना।

कन्व—अच्छा न भूलूँगा।

---

(६३) जैसा पति तेरे लिए मैंने अपने मन में विचारा था वैसा ही तैने अपने पुन्नों से पा लिया और चमेली को भी अच्छा आम का वृक्ष मिल गया अब तुम दोनों से निश्चिन्त हुआ।

शकुन्तला (कुछ चल कर और फिर कर)—यह कौन है जो मेरा अञ्चल नहीं छोड़ता।

[पीछे फिर कर देखती है

कन्व—

सवैय्या

कहुँ दाभन तें मुख जाको छियौ जब दुहिता लखि पावतही।
अपने करतें तिन घावन पै तुही तेल हिंगोट लगावत ही।
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहिं मूठ खवावतही।
मृगछौना सो क्यों पग तेरे तजे जाहि पूत लौं लाड़ लड़ावतही॥६४॥

शकुन्तला—अरे छौना मुझ सहवास छोड़ती हुई के पीछे तू क्यों आता है तेरी माँ तुझे जनते ही छोड़ मरी थी तब मैंने तेरा पालन किया अब मेरे पीछे पिता जी तुझे पालेंगे तू लौट जा।

[आँसू डालती हुई चलती है

कन्व—

दोहा

दृढ़ करि आँसू रोकि तू आगे देखन हेत।
उन्नत बरुनी दृगन ये काम देन नहि देत॥
ऊँची-नीची भूमि में गिरे न ठोकर खाय।
सावधान पग दीजिवे या मारग में आय॥६५॥

---

(६४) जिनका मुँह दाभ से चिरा हुआ देखकर घावों पर तू अपने हाथ हिंगोट का तेल लगाती थी जिसे तैंने समा के चावल खिला खिला कर पाला है और अपने बेटे की भाँति लड्याया है सो इस समय तेरे पैर क्योंकर छोड़ेगा।

(६५) धीरज बाँध कर आँसुओ को रोक ये तेरी उठी हुई बरुनियों वाली आंख को देखने नहीं देते वहाँ भूमि ऊँची नीची है ऐसा न हो कि ठोकर खाकर गिरे।

शारद्वत—हे भगवन्! सुनते हैं कि प्यारे जनों को पहुँचाने वहीं तक जाना चाहिये जहाँ तक जलाशय न मिले अब यह सरोवर का तट आ गया, आप हमें सीख देकर आश्रम को सिधारो।

(सब बड़ के नीचे ठहरते हैं)

कन्व—(आप ही आप)—उस राजा दुष्यंत के योग्य क्या संदेशा है जो मैं भेजूँ। [सोचता है

शकुन्तला (सखी से हौले हौले)—हे सखी देख चकवी कमल के पत्तों में छुपे हुए प्यारे चकवे को देखे विना आतुर हो कर कहती है कि मैं अभागी हूँ।

अनसूया—ऐसा मत कह !

दोहा

उचित होइ तोकों नरनाहू । सब रानिन सम राखे याहू ।
और जु अधिक भागवस भोगू। वधू वन्धुजन कहन न जोगू ।।६७।।

शारंगरव—यह सन्देशा मैंने भली भाँति गाँठ बाँध लिया है।

कन्व—बेटी अब तुझे भी कुछ सीख दूँगा क्योंकि वनवासी होकर भी हम लौकिक व्यवहारों को जानते हैं।

शारंगरव—विद्वान पुरुषों से क्या छुपा है।

चौपाई

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो। सखीभाव सौतिन में लीजो ।।
भरता यदपि करे अपमाना । कुपित होइ गहियो जिन माना ।।
मिठभाषिन दासिन संग रहियो। बड़े भागि पै गर्व न लहियो ।।
या विधि तिय गेहनि पद पावें। उलटी चलि कुलदोष कहावें ।।६८।।

कहो गौतमी यह शिक्षा कैसी है।

गौतमी—कुल वधुओं के लिए यह उपदेश बहुत श्रेष्ठ है। पुत्री इसे ध्यान में रखियो।

कन्व—बेटी आ मुझ से और अपनी सखियों से मिल ले।

शकुन्तला—हे पिता क्या प्रियम्वदा अनसूया यहीं से लौट जाँयगी।

सोच कर इस लड़की को सब रानियों के समान रखना हमारा इतना ही कहना है इससे अधिक जो कुछ हो। इस भाग्य के अधीन है हमारे कहने योग्य नहीं है।

(६८) ससुराल में जाकर बड़े बूढ़ों का आदरसत्कार करियो सौतों में ईर्षाभाव मत रखियो किन्तु सहेली भाव रखियो तेरा पति कदाचित् रिस भी हो जाय तो भी तू मान करके कड़ा वचन मत बोलियो दासियों से मिठबोली हूजियो और इस बात का अभिमान मत करियो कि मैं बड़े राजा की रानी हूँ जो बधू इस भाँति चलती है अच्छी गृहस्थिन कहलाती है और इससे उलटी रीति से चलती हैं सो कुल का दूषन बनती हैं।

कन्व—बेटी जब तक ये क्वारी हैं इन का नगर में जाना योग्य नहीं है गौतमी तेरे सङ्ग जायगी।

शकुन्तला (कन्व से भेंट कर)—अब मैं पिता की गोद से अलग होकर मलयागिरि से न्यारी की हुई चन्दन शाखा की भाँति परदेश में कैसे जीऊँगी।

कन्व—पुत्री ऐसी विकल क्यों होती है।

सवैय्या

जब कत कुलीन बड़े यशवंत की जाय के नारि कहाय है तू॥
अति वैभव के नित कामन ते छिनहू अवकाश न पाय है तू।
दिश पूरब जैसे दिनेश जने सुत उत्तम वेगि ही जाय है तू॥
तब मोते विछोह भए की विथा मन में नहिं नैकहु लाय है तू॥६६॥

(शकुन्तला पिता के पैरों पर गिरती है)

कन्व—मेरे अशीर्वाद से तेरी मनोकामना पूरी होगी।

शकुन्तला—(दोनों सखियों के पास जाकर) आओ सखियों दोनों एक ही संग मुझे भेंट लो।

दोनों सखी (भेंट कर)—हे सखी कदाचित राजा तुझे भूल गया हो तो यह मुन्दरी जिस पर उसका नाम खुदा है दिखा दीजो।

शकुन्तला—तुम्हारे इस संदेह ने तो मुझे कंपा दिया।

दोनों सखी—कुछ डरने की बात नहीं हैं अतिस्नेह में बुरी शंका होती ही है।

शारंगरव—अब दिन पहर से अधिक चढ़ गया चलो वेग विदा हो।

---

(६६) जब तू बड़े राजा की रानी होकर घर के कामों के अवकाश न पावेगी और पुत्र भी थोड़े ही दिनों में तू ऐसा जन लेगी जैसा कि पूरब की दिशा सूरज को जनती है तब तू मुझसे अलग होने का दुख भूल जायगी।

शकुन्तला (आश्रम की ओर मुख करके खड़ी है)—हे पिता तपोवन के दर्शन फिर कब कराओगे।

कन्व—बेटी सुन—

चौपाई

बनितिय बहुत दिवस भूपति की। सौतिनि चार कौन बसुमति की॥
करिके ब्याह सुवन समरथ को। मारग रुके न जाके रथ को॥
दैके ताहि कुटुम को भारा। तजि के राजकाल व्यवहारा॥
पति तेरो तुहि संग लै ऐहै। यह आश्रम तव तू पग दैहै॥१००॥

गौतमी—बेटी अब चलने का मुहूर्त्त बीता जाता है पिता को जाने दे। मुनिजी तुम जाओ यह तो बेर बेर ऐसे ही कहती रहेगी।

कन्व—हे बेटी मेरे तप के काम में विघ्न पड़ता है।

शकुन्तला (पिता से मिल कर)—हे पिता! मेरे लिये बहुत शोक मत करना क्योंकि तुम्हारा तपस्या-पीड़ित दुर्बल शरीर है।

कन्व—(गहरी साँस लेकर)—

दोहा

तैं आगे बोए सुता पूजा हित नीवार।
सो उपजे हैं आय ये परन कुटी के द्वार॥

---

(१०१) पृथ्वी भी राजा की पत्नी होती है इसलिए महर्षि कहता है कि हे बेटी जब तू बहुत दिन तक राजा की रानी अर्थात् पृथ्वी की सौत बन कर रह लेगी और अपने सूर वीर बेटे का जिस के रथ का कोई रोकने वाला न होगा ब्याह कर लेगी तब तेरा भरता बेटे को राज सौंप कर तुझ सहित इस आश्रम में आवेगा।

(१०१) हे बेटी! जब तक कुटी द्वार पर बोए हुए धान खड़े हैं इन्हें देख मेरा शोक क्योंकर शान्त होगा।

इन्हें लखत कैसे सकूँ अपनी बिथा मिटाय।
तो बिछुरन तें जो भई मेरे हिय में आय ॥१०१॥

अब जा तेरा मारग सुखकारी हो।

[शकुन्तला सखियों समेत चलती है

दोनों सखी (शकुन्तला की ओर देख कर)—हाय हाय अब बन वृक्षों ने शकुन्तला को दुरा लिया।

कन्व (श्वास ले कर)—हे अनसूया तुम्हारी सहेली गई अब तुम शोक छोड़ मेरे पीछे पीछे चली आओ।

दोनों सखी—हे पिता शकुन्तला बिना तो तपोवन सूना सा लगता है हम इसमें कैसे चलें।

कन्व—ठीक है प्रीत में ऐसा ही दीखता है। (ध्यान करता हुआ) शकुन्तला को ससुराल भेज कर अब मैं निश्चित हुआ।

सोरठा

पर घर की धन धीय, पठै ताहि घर पीय के।
आज विमल मम हीय, फेरि धरोहर जिमि दई ॥१०२॥

चौथा अंक समाप्त हुआ

---

(१०२) बेटी पराए घर का धन कहलाती है सो आज शकुन्तला को ससुराल भेज कर मैं ऐसा निश्चित हुआ हूँ जैसे कोई किसी की धरोहर फेर कर होता है।

अङ्क ५

स्थान-राजभवन

(राजा आसन पर बैठा है, माढव्य पास खड़ा है।)

माढव्य (कान लगा कर)—मित्र सङ्गीत शाला की ओर कान लगाओ देखो कैसा मधुर आलाप सुनाई देता है मेरे जाने तो रानी हंसपदिका गाने का अभ्यास कर रही है।

दुष्यन्त—अरे चुप रह सुनने दे।

(नेपथ्य में राग होता है।)

कालंगड़ा इकताला

भ्रमर तुम मधु के चाखन हार।
आम की रसभरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार॥
रहसि रहसि नित रस लैवे कों धावत है करि नेम।
क्यों कल आई कमल वसेरे कित भूले प्यारी को प्रेम॥१०३॥

दुष्यन्त—अहा कैसा प्रीति उपजाने वाला गीत है।

माढव्य—तुमने इन पदों का अर्थ भी समझा।

दुष्यन्त—(मुसका कर) हाँ समझा पहले मैं रानी हंसपदिका पै आसक्त था अब वसुमती में मेरा स्नेह है इसलिये मुझे उलाहना देती है। मित्र माढव्य! तू जा हमारी ओर से रानी हंसपदिका से कह दे कि हे रानी हम इसी उलाहने के योग्य हैं।

माढव्य—जो आज्ञा महाराज की (उठता है)। हे मित्र! जैसे अप्सरा क हाथ से तपस्वी का छुटकारा नहीं होता आज

---

(१०३) हे नए मधु के लोभी भौरे! तू तो आम की मञ्जरी को नित्य चुम्बन करने आता था अब कमल में बसते ही क्यों उसे ऐसा भूल गया।

महाराज की जय हो हे स्वामी! हिमालय की तराई के बनवासी तपस्वी स्त्रियों सहित कन्व मुनि का सँदेसा लेकर आए हैं उनके लिए क्या आज्ञा है।

दुष्यन्त (आदर से)—क्या कन्व मुनि का सँदेसा लाए हैं?

कंचुकी—हाँ प्रभू।

दुष्यन्त—तो सोमरात पुरोहित से कह दे कि इन आश्रम वासियों को वेद की विधि से सत्कार करके अपने साथ लावें मैं भी तब तक तपस्वियों से भेंटने योग्य स्थान में बैठता हूँ।

कंचुकी—जो आज्ञा। [बाहर जाता है

दुष्यन्त (उठकर)—हे प्रतिहारी! अग्नि स्थान की गैल बता।

प्रतिहारी—महाराज यह गैल है।

दुष्यन्त (इधर उधर फिर कर अधिकार के बोझ का दुःख दिखाता हुआ)—अपना अपना मनोरथ पाकर सब प्रसन्न हो जाते हैं परंतु राजा की कृतार्थता निरी क्लेश की भरी होती है।

दोहा

हाथ मनोरथ के लगे अभिलाषा भरि जाति।
हाथ लगे को राखिबो करत खेद दिन राति॥
नृपता हू यों जानिये ज्यों छत्री कर मांहि।
देत कष्ट पहले इतो जेतो मेटति नाहिं॥१०८॥

(नेपथ्य में)

दो ढाढ़ी—महाराज की जय रहे।

---

(१०८) राज मिल जाने से मन की अभिलाषा तो पूरी हो जाती है परन्तु राज का पालना दुःख देता है क्योंकि राजा की पदवी ऐसी है जैसे छतरी, कि उस का बोझ थामने में कष्ट होता है फिर पीछे धूप दूर होने से कुछ सुख मिलता है।

शारङ्गरव—हे ब्राह्मण ! यह तौ बड़ी बड़ाई की बात है परन्तु हम से पूछो तौ यह इनका धर्म्म ही है।

दोहा

फल आए तरवर झुके झुकत मेघ जल आय।
विभो पाय सज्जन झुकै यह परकाजि सुभाय ॥११४॥

प्रतीहारी—महाराज ! ये ऋषि लोग प्रसन्न मुख दीखते हैं इससे मैं जानता हूँ कि कोई कष्ट काम नहीं लाए।

दुष्यंत—(शकुन्तला की ओर देख कर)—तौ यह भगवती कौन है ?

दोहा

घूंघट पट की ओट दै को ठाढ़ी यह बाल।
पूरो दीठ परे नहीं जाको रूप रसाल॥
यह तपसिन के बीच में ऐसी परति लखाय।
लई मनो कोंपल नई पीरे पातन छाय ॥११५॥

प्रतीहारी—महाराज ! इसका वृत्तांत जानने को तौ मेरा जी भी बहुत चाहता है। परन्तु मेरी बुद्धि काम नहीं करती हाँ इतना तौ कहूँगी कि इस भगवती का रूप दर्शन योग्य है।

दुष्यंत—रहने दे पराई स्त्री को देखना अच्छा नहीं।

शकुन्तला—(आप ही आप अपने हृदय पर हाथ रख कर)—हे हृदय ! तू ऐसा क्यों डरता है आर्य्यपुत्र के प्रेम की सुध करके धीरज धर।

---

(११४) फूल लगने पर वृक्ष झुकता है पानी लाकर बादल झुकता है और वैभव पाकर सज्जन झुकता है परकाजियों का बहुधा यही स्वभाव होता है।

(११५) घूंघट से मुँह छुपाये हुए यह कौन खड़ी है जिसकी पूरी सुन्दरता दिखलाई नहीं देती तपस्वियों से घिरी हुई ऐसी लगती है जैसे पुराने पत्तों से ढकी हुई नई कोंपल।

प्रतीहारी (दुष्यन्त से)—महाराज तो अपने धर्म्म में सावधान हैं नहीं तो संमुख आए ऐसे स्त्री रत्न को देख कर कौन सोच विचार करता है।

शारङ्गरव—हे राजा ऐसे चुपके क्यों हो रहे हो।

दुष्यन्त—तपस्वियो मैं बार बार सुध करता हूँ परन्तु स्मरण नहीं होता कि इस भगवती से कभी मेरा विवाह हुआ और जब इस गर्भवती के लेने से मुझे क्षेत्री* कहलाने का डर है तो क्यों कर इसे स्वीकार कर सकता हूँ।

शकुन्तला (आप ही आप)—हे दैव! जो मेरे सङ्ग ब्याह ही में सन्देह हैं तो अब मेरी बहुत दिन की लगी आशा टूटी।

शारङ्गरव—ऐसा मत कहो—

चौपाई

जासु सुता नृप तैं छलि लीनी। यह अनीति जाके सङ्ग कीनी॥
जाने तदपि बुरी नहिं मान्यो। ब्याह तुम्हारो शुद्ध प्रमान्यो॥
चुरी वस्तु दैके जिमि कोई। चोरहि साह बनावत होई॥
सो न जोग अपमान मुनीसा। देखि बिचारि तुही छिति ईसा॥१२१॥

शारद्वत—शारंगरव अब तुम ठैरो। हे शकुन्तला हम को जो कुछ कहना था कह चुके और उत्तर भी सुन लिया अब तू कुछ कह जिससे इसे प्रतीति हो।

शकुन्तला (आप ही आप)—जो वह स्नेह ही न रहा तो

---

*जिस मनुष्य की स्त्री दूसरे पुरुष से गर्भवती हो वह क्षेत्री कहलाता है।

(१२१) हे राजा जिस मुनि की कन्या को तुमने छलकर दूषित किया और जिसने कुछ बुरा न मान कर वही कन्या तुम्हारी ब्याहता स्वीकार कर ली और तुम्हारे पास ऐसे भेज दी जैसे कोई चोरी की वस्तु पाकर फिर वही वस्तु चोर को साह बनाने के लिए उसे दे देता है सो क्या ऐसे अपमान के योग्य है जैसा तुम उसके साथ करते हो।

अनजाने मन से मरम जुरति कहूँ जो प्रीति।
पलटि वैर बनि जाति फिर पाछे याही रीति ॥१२५॥

दुष्यंत—क्या तुम इसी की बातों की प्रतीति करके मुझे इतने दोष लगाते हो।

शारङ्गरव (अवज्ञा करके)—क्या तुमने यह उलटा वेद नहीं सुना।

दोहा

जन्महिं तें जाने नहीं जानी छलकी रीति।
ताके बचनन की कछू करिये नहीं प्रतीति॥
मान लीजिये उनहिं कों सतवादी विद्वान।
विद्या लों सीख्यो भलो जिन परवञ्चन ज्ञान ॥१२६॥

दुष्यंत—हे सत्यवादी ! भला यह भी माना कि हमने दूसरे को छलना विद्या की भाँति सीखा है परंतु कहो तो इस भगवती के छलने से मुझे क्या मिलेगा।

शारङ्गरव—भारी विपत्ति।

दुष्यंत—नहीं नहीं यह बात प्रतीति न की जायगी कि पुरुवंशी अपने पराए के लिये विपत्ति माँगते हैं।

शारद्वत—हे शारङ्गरव ! इस बात से क्या अर्थ निकलेगा हम तो गुरु का संदेसा लाए थे सो भुगता चुके अब चलो

[राजा की ओर देख क

दोहा

यह तेरी नारी नृपति तू याको भरतार।
राखन छाँड़न को सबै तोही को अधिकार ॥१२७॥

(१२६) जिसने जनम से छल का नाम भी नहीं जाना उसकी बात मत मानो और जिन्होंने दूसरों को छलना विद्या की भाँति सीखा है उन्हें सच्चा जानो।

(१२७) हे राजा यह तेरी स्त्री है और तू इसका पति है अब इसे

आओ गौतमी आगे चलो।

[दोनो मिश्र और गौतमी जाते हैं

शकुन्तला—हाय ! इस छलिया ने तो त्यागी अब क्या तुम भी मुझ दुखिया को छोड़ जाओगे। [उनके पीछे चलती है

गौतमी (खड़ी होकर)—बेटा शारङ्गरव ! शकुन्तला तो यह पीछे पीछे रोती आती है अभागी को निरमोही पति ने छोड़ दिया अब क्या करें।

शारङ्गरव—(क्रोध करके शकुन्तला से)—हे कर्महीन ! तू क्या स्वतंत्र हुआ चाहती है। [शकुन्तला थरराती है

शारङ्गरव—

चौपाई

है जो शकुन्तला तू ऐसी। नरपति तोहि बतावत जैसी॥
तो जग में तू पतित कहावे। पिता गेह आवन क्यों पावे॥
अरु जानति है मन माहीं। दोष कियो मैंने कुछ नाहीं॥
तो यहि रहति लगै तू नोकी। दासीहू बनि के निज पी की॥१२८॥

अब तू यहीं ठैर हम आश्रम को जाते हैं।

दुष्यन्त—हे तपस्वियो ! क्यों इसे धोका देते हो देखो—

दोहा

चंद जगावतु कुमुदनी पद्मिनि ही दिननाथ।
जती पुरुष कहुँ ना गहें परनारी को हाथ॥१२९॥

रखने न रखने का तुझी को अधिकार है।

(१२८) हे शकुन्तला ! जो तू ऐसी है जैसी कि यह राजा बतलाता है तो तू दूषित होकर पिता के घर क्यों आने पावेगी और जो तू अपने मन से सच्ची है तो तुझे पति की दासी बन कर भी यहाँ रहना अच्छा है।

(१२९) चन्द्रमा कमोदिनी को ही खिलाता है और सूरज कमलिनी ही को जितेन्द्री पुरुषों की रीति नहीं है कि दूसरे की स्त्री को तकें।

शारङ्गरव—सत्य है परन्तु तुम ऐसे हो कि दूसरी का संग पाकर अपने पहले किये को भूलते हो फिर अधर्म्म से डरना कैसा।

दुष्यन्त (पुरोहित से)—मैं तुमसे इस विषय में यह पूछता हूँ।

दोहा

कै मैं ही बौरो भयो कै झूठी यह नारि।
ऐसे संसय के विषय तुम कछु कहो बिचारि॥
किधों दारत्यागी बनूँ करि याको अपकार।
कै परनारी परस को लेहुँ दोष सिरभार॥१३०॥

पुरोहित (सोच कर)—अब तो यह करना चाहिये।

दुष्यन्त—क्या करना चाहिये सो कृपा करके कहो।

पुरोहित—जब तक इस भगवती के बालक का जन्म हो तब तक यह मेरे घर रहे क्योंकि अच्छे अच्छे ज्योतिषियों ने आगे ही कह रक्खा है कि आपके चक्रवर्ती पुत्र होगा सो कदाचित इस मुनि कन्या के ऐसा ही पुत्र हो जिसके लक्षण चक्रवर्ती के से पाये जांय तो इसे आदर से रनवास में लेना और न हो तो यह अपने पिता के आश्रम को चली जायगी।

दुष्यन्त—जो तुम बड़ों को अच्छा लगे सो करो।

पुरोहित (शकुन्तला से)—आ पुत्री मेरे पीछे चली आ।

शकुन्तला—हे धरती! तू मुझे ठौर दे मैं समा जाऊँ।

(रोती हुई पुरोहित के पीछे पीछे तपस्वियों सहित जाती है और राजा शाप के वश भूला हुआ भी शकुन्तला ही का ध्यान करता है।)

(१३०) न जाने मैं ही भूल गया हूँ अथवा यही झूठ कहती है इस सन्देह में हे पुरोहित, तुम कहो दोनों पापों में कौन सा बड़ा है अपनी स्त्री को त्यागना अथवा पराई को ग्रहण करना।

(नेपथ्य में)—अहा बड़ा अचम्भा हुआ।

दुष्यन्त (कान लगा कर)—क्या हुआ ?

(पुरोहित आता है)

पुरोहित (आश्चर्य करके)—महाराज ! बड़ी अद्भुत बात हुई।

दुष्यन्त—क्या हुआ ?

पुरोहित—जब यहाँ से कन्व के चेलों की पीठ फिरी—

दोहा

निन्दा अपने भागि की चली करति वह तीय।
रोई बाँह पसारि के भई विथित अति हीय॥

दुष्यन्त—तब क्या हुआ ?

पुरोहित—

दोहा

तब अप्सर तीरथ निकट जाने कित तें आय।
ज्योति एक तिय रूप में लैगइ वाहि उड़ाय ॥१२१॥

[सब आश्चर्य करते हैं

दुष्यन्त—मुझे जो बात पहले भास गई थी सोई हुई अब इसमें तर्क करना निष्फल है तुम जाओ विश्राम करो।

पुरोहित—महाराज की जय रहे।

[बाहर जाता है

दुष्यन्त—हे वेत्रवती ! मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है तू मुझे शयन स्थान की गैल बता।

---

(१२१) जब वह अपने भाग्य को बुरा कहती हुई चली और व्याकुल होकर हाथ पसार रोई तब अप्सरा तीर्थ के पास किसी ओर से एक ज्योति स्त्री रूप में आकर उसे उड़ा ले गई।

क्या होगा और कदाचित आप पूछते ही हैं तो भरत का यह वचन पूरा होने दीजिये—

शिखरनी

प्रजा काजें राजा नित सुकृत पर उद्यत रहैं।
बड़े वेदज्ञानी हित सहित पूजें सरसुती॥
उमास्वामी शम्भू जगतपति नीललोहित प्रभू॥
छुटावें मोहू कों धिपति अति आवागवन सों॥१६६॥

कश्यप—तथास्तु।

[सब बाहर जाते हैं

॥ समाप्त ॥

छुएगो जो तू र भवर कहुँ याकों तनकहूँ ।
करूँ तोकों वन्दी पकरि प्रफुल्ला के उदर म ।।१५२।।

माढव्य—ऐसे कड़े दण्ड से क्यों न डरंगा (हँस कर आप ही आप)—यह तो सिड़ी हो गया है इसके साथ रहने से मैं भी ऐसी बातें कहने लगा। (प्रकट) हे सखा! यह प्यारी नहीं है चित्र है।

दुष्यन्त—कैसा चित्र ?

सानुमती—(आप ही आप) इस समय तो मुझे भी ज्ञान न था कि चित्र है फिर इस राजा को क्यों ज्ञान रहा होगा।

दुष्यन्त—अरे मित्र तैंने बुरा किया—

दोहा

मैं दरशन सुख लेत हो इकटक चित्त लगाय।
साक्षात ठाड़ी मनो सन्मुख मेर आय ।।
तौं लो तैं मोकों वृथा सुरति दिवाई मित्र ।
अब प्यारी फिर रहि गई लिखी चित्र की चित्र ।।१५३।।

[आँसू डालता है

सानुमती—(आप ही आप) विरह की गति निराली है जिधर देखता है इसे क्लेश ही दृष्टि आता है।

दुष्यंत—हे मित्र! अब मैं यह बड़ी बड़ी का दुःख कैसे सहूँ ?

मैंने मिलाप के समय धीरे धीरे अधरामृत लिया था अरे भौंरे जो तू इन होठों को तनिक भी छुएगा तो तुझे कमल के उदर रूपी वन्दीघर में बँधुआ बनाकर डाल दूँगा।

(१५३) हे मित्र मैं तो अपनी प्यारी के दर्शन का सुख उठा रहा था तैंने क्यों कह दिया कि यह चित्र है अब तक तो मेरे आगे वह साक्षात् थी अब फिर चित्र लिखी ही रह गई।

क्या होगा और कदाचित आप पूछते ही हैं तो भरत का यह वचन पूरा होने दीजिये—

शिखरनी

प्रजा काजें राजा नित सुकृत पर उद्यत रहैं।
बड़े वेदज्ञानी हित सहित पूजैं सरसुती॥
उमास्वामी शम्भू जगतपति नीललोहित प्रभू॥
छुटावें मोहू कों विपति अति आवागवन सों॥१६६॥

कश्यप—तथास्तु।

[सब बाहर जाते हैं

❀ समाप्त ❀